गुरु रविदास

राष्ट्रीय जीवनचरित

गुरु रविदास

आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2723-2

पहला संस्करण : 1975

दूसरी आवृत्ति : 1999 (शक 1921)

Guru Ravidas *(Hindi)*

रु. 25.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषयानुक्रम

प्रस्तावना

हमारे इस धर्म-परायण देश में समय-समय पर ऐसे महापुरुषों का प्रादुर्भाव होता रहा है जिन्होंने भारत के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक इतिहास को अपनी अत्यंत महत्वपूर्ण देन से समृद्ध किया है। ऐसे असाधारण व्यक्तियों में उन संतों और भक्तों के नाम प्रथम पंक्ति में आते हैं जिन्होंने हिंदू-धर्म और संस्कृति के वास्तविक स्वरूप और गौरव को बनाए रखा एवं समाज के तिरस्कृत, उत्पीड़ित और निराश्रित लोगों को आदर, आश्रय और सांत्वना प्रदान करके ऐसे समाज की रचना का प्रयत्न किया, जिसमें सभी को समता और स्वतंत्रता के आधार पर जीवन का अधिकार मिल सके। ऐसे परम संतों में भक्त शिरोमणि श्री गुरु रविदासजी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है जिन्होंने चर्मकार जाति में जन्म लेकर भी पुरातन संस्कृति के सच्चे स्वरूप को निखारने का प्रयास किया और उसे युग-युगांतर तक बनाए रखने के लिए महान कार्य किया।

गुरु रविदासजी को 14वीं शती के उन संत कवियों में एक अग्रगण्य स्थान प्राप्त है जिन्होंने सहज और सरल भाषा में अपनी वाणी द्वारा भक्ति रस की पावन गंगा बहाई, मानव-मात्र के लिए समता का संदेश दिया, तत्कालीन भारत के करोड़ों अशांत लोगों को आश्वस्ति एवं शांति प्रदान की और अंधविश्वासों व असमानता से पीड़ित जन-मानस का उद्बोधन किया।

रविदासजी जन्मजात संत थे। वे गृहस्थ जीवन के बंधनों में जकड़े रहने पर भी पूरे संत ही रहे। उन्होंने भक्ति-आंदोलन को एक नई दिशा देकर उसे मानव-कल्याण और समाज-सुधार आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया, जिससे सामाजिक संगठन को अनोखी प्रेरक शक्ति मिली। इससे न केवल पुरातन संस्कृति की रक्षा हुई, अपितु मानवता को बचाए रखने में भी मदद मिली। फलतः "मानव-मानव सभी समान" की भावनाओं ने एक ऐसे जन-कल्याणकारी आंदोलन का रूप धारण किया जिसमें कर्ममय जीवन को ही वास्तविक धर्म माना जाने लगा। रविदासजी ने "कर्म ही धर्म है" के सिद्धांत को अपनाकर गीता के इस आदेश की ही पुष्टि की है कि ईश्वर का आश्रय लेकर सदा कर्म करता हुआ मनुष्य भगवत-कृपा से अनश्वर परमपद को प्राप्त करता है (गीता 18, 56)। रविदासजी ने अपनी वाणी में कहा है कि–

जिह्वा सों ओंकार जप, हत्थन सों कर कार
राम मिलहिं घर आइ कर, कहि रविदास विचार।
नेक कमाई जय करहि, ग्रह तजि बन नहिं जाय,
रविदास हमारो राम राय ग्रह महिं मिलिहि आय।

सतगुरु रविदास की वाणी में कटुता नहीं, अपितु मधुरता और विनम्रता है। उन्होंने न तो किसी पर कठोर आक्षेप किए और न व्यंग्य। वे कबीर के समसामयिक तो थे परंतु उन्होंने कबीर की भाषा का प्रयोग नहीं किया। वे मधुर स्वभाव के सच्चे, वैष्णव, अहिंसक, निरभिमानी परमसंत थे, जिन्होंने अनेक कठिनाइयों को सहकर भी भगवत-भक्ति का रास्ता नहीं छोड़ा और परिश्रम से अपनी रोजी-रोटी कमाई, साधू-संतों की सेवा की और ऐसे समाज की स्थापना के लिए जीवनभर संघर्ष करते रहे जहां सबको समानता, आत्मिक शांति और सुख मिल सके।

रविदास ने भिन्न-भिन्न संप्रदायों तथा मतवाद के प्रभाव को आत्मसात करके अपने धर्म-प्रचार और समाज-सुधार अभियान को एक स्वतंत्र रूप दिया था जिसे हम मानवधर्म अथवा विश्वधर्म की संज्ञा दे सकते हैं। यहां न तो किसी कर्मकांड का बंधन है, न वर्ण तथा जाति पर आधारित कोई सीमा। गुरु रविदास की जन-कल्याण की इस विचारधारा ने ही उन्हें सर्वजन श्रद्धेय संत बना दिया। संत शिरोमणि गुरु रविदासजी की जीवन-गाथाएं और उनकी अमृतवाणी आज के इस वैज्ञानिक के युग में भी भावहीन कठोर मानव हृदय को द्रवित और रस-प्लावित करने की क्षमता रखती है तथा पिछड़े वर्ग के करोड़ों लोगों को सांत्वना देकर उनका मार्गदर्शन करती है।

महापुरुषों का जीवन और उनका अमर संदेश जन-साधारण के लिए "रोशनी के मीनार" का काम करता है अतः यह आवश्यक है कि जन-साधारण को देश की उन महान विभूतियों के विषय में जानकारी दी जाए ताकि वे जान सकें कि हमारा देश किन-किन परिस्थितियों का सामना करता हुआ यहां तक आ पहुंचा है, जहां हम आज हैं।

"राष्ट्रीय जीवनचरित" के अंतर्गत यह जो गुरु रविदासजी की जीवनी पाठकों को भेंट की जा रही है, इसका उद्देश्य विद्वत्तापूर्ण और सर्वांगीण तरीके से रविदास का जीवन-वृत्त प्रस्तुत करना नहीं है, अपितु सर्वसाधारण को उस परम संत गुरु रविदास के विषय में कुछ जानकारी देना है, जिनकी पवित्र वाणी में निर्माणकारी तत्व, जीवन की पवित्रता, आचरण की शुद्धता, वासनाओं से मुक्ति, प्रभु से मिलन की तड़प, मानव प्रेम, उदारता, शील, क्षमा, संतोष, साधुता, विनम्रता, विवेकशीलता आदि अनेक विशेषताएं हैं जो आज के इस वैज्ञानिक युग के भटके हुए इंसान को प्रभावित करके उसे मानव से महामानव बनाने की क्षमता रखती हैं। संतों और भक्तों ने अपनी पवित्र वाणियों में जनता की भाषा का प्रयोग करके उन्हें अपना अमर संदेश दिया है। जिन शाश्वत मूल्यों को इन

वाणियों में व्यक्त किया गया है वे प्रत्येक देश, समाज और काल के लिए अपनी विशेष उपयुक्तता रखती हैं । रविदासजी की जीवन गाथा और उनकी अमृत वाणी भी जन-कल्याणी है । जन-कल्याण के लिए ही यह पुस्तक लिखी गई है ।

मैं न तो कोई विद्वान हूं और न अच्छा लेखक । हां, एक जन्मजात समाज सेवक जरूर हूं जिसका संबंध रविदास परिवार से है । मेरी समाज सेवा और रविदास में श्रद्धा एवं निष्ठा को देखकर ही 'नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया' ने मुझसे यह छोटी-सी पुस्तक श्री गुरु रविदास सभा, यू.के. के आग्रह पर लिखवाई है । इस पुस्तक को 'नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ने छापने का निश्चय करके हमारे समाज की एक बहुत बड़ी सेवा की है जिसके लिए मैं अपने समाज की ओर से आभार प्रकट करता हूं । मुझे आशा है कि जिस श्रद्धा और भावना से प्रेरित होकर मैंने यह पुस्तक लिखी है, उसी भावना से इसे पाठक-वृंद देखेंगे और जहां कहीं कोई भूल देखें, उसे ठीक करके मुझे सूचित करेंगे ताकि उसका सुधार कर सकूं ।

– आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद

1

रामानंद का भक्ति-आंदोलन और गुरु रविदास

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से है। इस संस्कृति का परिचय करवाने वाली पुस्तक ऋग्वेद है जो संसार का सर्वप्रथम ग्रंथ है। वेदों में भारतीय संस्कृति का सच्चा स्वरूप बताया गया है, जो मनुष्य मात्र के लिए समत्व और ममत्व का एक अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। इनमें मानव-समाज के लिए समानता का व्यवहार आदर्श के तौर पर प्रस्तुत किया गया है। इनके अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि मूल रूप में भारतीय संस्कृति मानव-मानव में समानता का समर्थन करती है। आरंभ में जाति-पांति और ऊंच-नीच का कोई भेद नहीं था। मनुष्य का रहन-सहन एवं आचार-व्यवहार ही उसकी उच्चता तथा निम्नता की सबसे बड़ी कसौटी थी। मानव-समाज में जाति एवं कुल से भेद-भाव मानने की बातें बहुत बाद की हैं।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त का एक मंत्र है (ऋग्वेद 10.90.12)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पदा भ्यां शूद्रो अजायत ।।

—विराट्-रूप परमात्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, ऊरूओं से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए।

इसमें मानव समाज की रचना की अत्यंत सुंदर एवं स्पष्ट व्याख्या की गई है। इस मंत्र का भाव इस प्रकार समझना चाहिए : मानव एक विराट् समाज पुरुष है। समाज में पढ़ने-पढ़ाने, सोचने-समझने और समाज के अन्य लोगों को आदेश एवं उपदेश देने का कार्य करने वाले व्यक्ति इस समाज रूपी विराट् पुरुष के मुख हैं। इन्हें ब्राह्मण नाम दिया गया। समाज की रक्षा का कार्य करने वाले लोग उस समाज रूपी विराट् पुरुष के हाथ है, इन्हें क्षत्रिय कहा गया। समाज में व्यापार, पशुपालन तथा कृषि कार्य करके समाज रूपी विराट् पुरुष के भोजन तथा आच्छादन की व्यवस्था करने वालों को ऊरू कहा गया

और इन्हें वैश्य कहकर सम्मान दिया गया। इस समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करने, उनके बोझ को अपने ऊपर उठाने वाले लोगों को पैर कहा गया और इन्हें शूद्र नाम दिया गया। इस प्रकार समाज के व्यक्तियों को कर्म के अनुसार बांटकर उन्हें पृथक-पृथक तथा विशेष नाम से पुकारा गया। अब, जैसे शरीर के मुख (सिर), हाथ, ऊरू और पैर, सब अंग एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और इनमें प्रत्येक का अपना-अपना विशेष महत्व है। जिस प्रकार इनमें एक को बड़ा और दूसरे को छोटा नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार समाज में ब्राह्मण आदि सभी लोग समान हैं। उनमें ऊंच-नीच तथा छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं किया जा सकता।

मानव समाज की एकता तथा समानता की यही वैदिक विचारधारा है। वैदिक युग में जीवन निर्वाह के लिए कोई भी काम-धंधा अपनाने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। कोई व्यक्ति केवल काम-धंधे के आधार पर छोटा या बड़ा नहीं माना जाता था। एक ही परिवार के सदस्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का कार्य कर सकते थे। इस प्रकार प्राचीनकाल में वर्ण-व्यवस्था का आधार कर्म था, जन्म नहीं, जैसा कि बाद में माना भी गया।

भारतीय संस्कृति समानता एवं विश्वबंधुत्व की भावना की पूर्ण समर्थक रही है। इसका सबसे बड़ा नारा है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्॥

—सब सुखी तथा निरोग रहें। सबका भला हो। कोई भी दुख का भागी न बने।

ऋग्वेद (1,89,8) का ऋषि इसी भावना से भरा हुआ ही तो कहता है–

भद्रं कर्णेभिः शृणुयामः देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

—हम कानों से भला सुनें। हम आंखों से भला देखें।

विश्वबंधुत्व की भावना से ओत-प्रोत यजुर्वेद (36,18) का ऋषि इच्छा करता है–

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

—सब मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। सबको मैं मित्र की दृष्टि से देखूं। हम सब परस्पर मित्रता का व्यवहार करें।

इसी प्रकार ऋग्वेद (10,191,3-4,10,116,6) का ऋषि कामना करता है–

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानो वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनः॥
केवलाघो भवति केवलादी।

—हमारा नारा समान होना चाहिए। हमारी सभा एक होनी चाहिए। हमें एक मन और एक विचार वाला होना चाहिए। हमारा खान-पान एक साथ होना चाहिए, क्योंकि अकेला खाने वाला पापी होता है।

एक स्थान पर ऋग्वेद (5,60,5) समान भावना एवं समान आचरण की स्पष्ट घोषणा करता है–

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सम्भ्रातरो वावृधुः सौभाग्याय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुधा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः।।

—हममें कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं, कोई ऊंचा नहीं, कोई नीचा नहीं। हम सब भाई की तरह मिलकर अपने सौभाग्य के लिए उन्नति करें। परमात्मा हम सबके पिता हैं और हम सबको सुख देने वाली, उत्तम दूध पिलाकर पालन करने वाली प्रकृति हम सबकी माता है।

भारतीय संस्कृति में जहां 'मानव-मानव सभी समान' के सिद्धांत पर बल दिया गया है, वहां उसमें मानव के पवित्र जीवन तथा सदाचार को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

किंतु, आगे चलकर भारतीय संस्कृति का यह रूप तथा आदर्श सर्वथा विलुप्त हो गया। कुछ कट्टरपंथियों एवं रूढ़िवादियों ने इसे बिलकुल विकृत कर दिया। तत्कालीन धार्मिक नेताओं ने समाज के लोगों पर ऐसी कठोर पाबंदियां लगाईं जिनके कारण 'मानव-मानव सभी समान' का उच्च सिद्धांत ही समाप्त नहीं हुआ, अपितु एक ही धर्म के मानने वाले व्यक्तियों को शूद्र, चांडाल, अधम एवं नीच कहकर नीचे गिरा दिया गया। इतना ही नहीं, अपनी इच्छानुसार प्रभु-भक्ति करने पर अनेक प्रतिबंध लगाकर उन्हें धार्मिक समानता के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया।

मध्यकाल (14वीं-16वीं शती) में राजनीतिक परिवर्तन के कारण हिंदू-धर्म तथा हिंदू-समाज अपनी सामाजिक एवं धार्मिक कट्टरता द्वारा छिन्न-भिन्न ही हो चला था। इस काल में वर्णाश्रम व्यवस्था के बंधन और भी कड़े कर दिए गए थे। इसके लिए कर्मकांड तथा आचार-व्यवहार पर अधिक बल दिया जाने लगा था। इसी से अस्पृश्यता, जाति-पांति एवं ऊंच-नीच के विचार उग्र रूप से पनपे और बढ़े। इन कठोर सामाजिक नियमों के पालन में किसी भी प्रकार की शिथिलता दिखाने वाले लोग जाति-बहिष्कृत कर दिए जाते थे। इस प्रकार इन जाति-बहिष्कृत लोगों की अलग जातियां बन जातीं और इन्हें शूद्र तथा नीच समझा जाता था जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय संस्कृति की मूल भावना ही अस्त-व्यस्त हो गई।

इस सामाजिक परिवर्तन तथा अव्यवस्था के साथ-साथ मध्यकाल में धार्मिक दशा भी बड़ी चिंतनीय थी। इस समय धर्मोपासना की जितनी भी पद्धतियां प्रचलित थीं, उनमें बाह्याचार और प्रदर्शन की ही अधिकता थी। सचाई और पवित्रता उनमें नाम मात्र को

भी नहीं रह गई थी। सब ओर कट्टर जातिवाद एवं गुरुडम का बोलबाला था।

ऐसी निराशापूर्ण, चिंताजनक एवं अव्यवस्थित परिस्थितियों के घोर संकट काल में महान समाज सुधारक तथा मानव मात्र के लिए असीम करुणा रखनेवाले महापुरुष स्वामी रामानंदजी (संवत 1356-1467 वि.) ने समस्त उत्तर भारत में भक्ति-आंदोलन चलाया, डा. ग्रियर्सन के शब्दों में 'जो बिजली की चमक के समान इस विशाल देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया' और इस आंदोलन ने भारतीय संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने का एक अनुपम कार्य किया। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदीजी के शब्दों में हम कह सकते हैं 'भक्ति मतवाद ने इस अवस्था को संभाला और हिंदुओं में नवीन और उदार आशावादी दृष्टि प्रतिष्ठित की।'

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के संबंध में कबीर पंथियों में यह प्रचलित है :-

'भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानंद।'

अर्थात भक्ति का उदय द्राविड़ देश (दक्षिण) में हुआ और रामानंद उसे उत्तर भारत में लाये।

दक्षिण में वैष्णव भक्ति का प्रचार था जिसका पूर्ववर्ती तथा प्राचीन रूप भागवत-भक्ति है। दक्षिण में अनेक वैष्णव भक्त (आलवार) एवं आचार्य हुए। वैष्णव आचार्यों में रामानुजाचार्य (1017-1137 ई.) विशेष उल्लेखनीय हैं जिनकी परंपरा में देवाचार्य, हर्यानंद और राघवानंद के पश्चात चौथे आचार्य स्वामी रामानंदजी थे।

स्वामी रामानंदजी के विषय में संत नाभादासजी ने अपने भक्तमाल में लिखा है :-

श्री रामानंद रघुनाथ ज्यों द्वितीय सेतु जगतरन कियो।
विश्वमंगल आधार भक्ति दसधा के आगर।।
बहुत काल बपु धारि कै प्रणत जननि को पार कियो।
श्री रामानंद रघुनाथ ज्यों द्वितीय सेतु जगतरन कियो।।

—रामानंदजी विश्व का कल्याण करनेवाले, पीड़ितों को आश्रय देनेवाले और दशधा भक्ति को मानने वाले थे। वे बहुत समय तक जीवित रहे और उन्होंने अनेक शरणागत लोगों का उद्धार किया। जैसे श्री रामचंद्रजी ने समुद्र पार करने के लिए उसपर पुल बनाया था उसी प्रकार श्री रामानंद ने इस संसार सागर से पार होने के लिए दूसरा सेतु तैयार किया।

स्वामी रामानंदजी ने भवसागर को पार करने के लिए जिस द्वितीय सेतु का निर्माण किया वह है—राम-भक्ति सेतु। उन्होंने राम-भक्ति का संदेश जनता को दिया। उनके अनुसार 'राम' ही ब्रह्म हैं और राम ही संसार को बनाने वाले हैं। राम को प्राप्त करना मनुष्य का परम पुरुषार्थ है। जीव को राम की ही भक्ति करनी चाहिए। राम का प्रेमपूर्वक

निरंतर स्मरण ही 'भक्ति' है ।

प्रभु भक्ति को आधार बनाकर आचार्य रामानंदजी ने भारतीय संस्कृति के मूल आदर्श मानव समानता का प्रचार किया । समय की आवश्यकता को ध्यान में रखकर उन्होंने तत्कालीन धार्मिक विधि-विधानों के स्थान पर राम की सहज-भक्ति को अपनाया और उसका प्रचार किया । उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था, जाति-पांति एवं अस्पृश्यता की कृत्रिम मर्यादाओं को छिन्न-भिन्न करके भक्ति के द्वार सब के लिए खोल दिये ।

स्वामी रामानंद द्वारा प्रचारित वैष्णव भक्ति की विचारधारा ने समाज में फैली हुई सभी पाबंदियों को तोड़कर प्राणिमात्र को भाई-भाई की भांति जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी । पंडित परशुराम चतुर्वेदीजी ने अपनी रचना "उत्तर भारत की संत परंपरा" में रामानंदजी के महान कार्यों का उल्लेख करते हुए ठीक ही कहा है : 'हरिभजन के आधार पर जाति और वर्ण संबंधी कड़े नियमों को शिथिल कर सर्वसाधारण को भी कुलीनवत अपनाने की प्रथा चलाकर उन्होंने मनुष्यमात्र की वास्तविक एकता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया ।'

उदारमना स्वामी रामानंदजी के इन क्रांतिकारी विचारों तथा स्वयं उनकी विद्वता, महान व्यक्तित्व, सहज-सबल जीवन, सहृदयता, मानव-प्रेम एवं भक्ति-भावना से प्रेरित और प्रभावित होकर समाज के सभी वर्गों के छोटे-बड़े व्यक्ति उनकी तरफ आकर्षित हुए । वे लोग या तो उनके शिष्य हो गये या फिर उनका गुरुवत सम्मान करते हुए उनके मानवतावादी विचारों को अपने व्यक्तिगत जीवन में अपनाकर उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान करने लगे । इस प्रकार उस युग में जनता में संन्यासी, संतों, भक्ति एवं सद्गृहस्थों की एक मानवतावादी विशाल वाहिनी तैयार हो गई, जिसने तत्कालीन समाज के विकृत रूप पर विजय प्राप्त की । इसने ऐसे नवीन समाज की स्थापना की जो भक्ति एवं सदाचार पर आधारित था और जिसमें जाति-पांति, छूआछूत, खान-पान तथा ऊंच-नीच का कोई भेदभाव नहीं था ।

डा. मुंशीराम शर्मा ("भक्ति का विकास", पृष्ठ 383) का कहना है कि स्वामी रामानंदजी के समकालीन एक पहुंचे हुए फकीर मौलाना रशीदुद्दीन ने अपनी पुस्तक "तजिकिरातुल-फुकरा" में स्वामीजी के शिष्यों की संख्या 500 से भी अधिक लिखी है । किंतु उनमें 12 शिष्यों को गुरु का विशेष कृपा-पात्र माना है । संत नाभादासजी ने भी 12 मुख्य शिष्यों के नाम गिनाने के पश्चात स्वामी रामानंद के एक से एक विख्यात शिष्यों-प्रशिष्यों के होने की बात स्वीकार की है–

अनंतानंद कबीर सुखा सुरसुरा पदमावत नरहरि ।
पीपा भावानंद रविदास धना सेन सुरसुर की धरहरि ।।
औरौ शिष्य प्रशिष्य एकतें एक उजागर ।।

संत नाभादासजी के अनुसार स्वामी रामानंदजी के 12 प्रमुख शिष्यों में– 1. अनंतानंद, 2. कबीर, 3. सुखानंद, 4. सुरसुरानंद, 5. पद्मावती, 6. नरहर्यानंद, 7. पीपा, 8. भावानंद, 9. रविदास, 10. धन्ना, 11. सेन और 12. सुरसुरी शामिल हैं।

इन 12 प्रमुख शिष्यों के चयन से स्वामी रामानंदजी के मानवतावादी उदार दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है कि उन्होंने सभी वर्ग एवं वर्ण के व्यक्तियों को भक्ति में दीक्षित किया था और उन्हें अपना शिष्य बनाया था। इन शिष्यों में रविदास चमार, कबीर जुलाहा, धन्ना जाट, सेन नाई और पीपा क्षत्रिय राजा थे। इन भक्तों में जहां पुरुष शामिल थे वहां पद्मावती स्त्री वर्ग की प्रतिनिधि भी थी।

स्वामी रामानंद जी ने 111 वर्ष की दीर्घायु भोगकर संवत 1467 वि. में निर्वाण प्राप्त किया। "भारत दिग्विजय" पुस्तक में लिखा है कि रामानंदजी ने अपना निर्वाण समय समीप जानकर धन्ना, कबीर, रविदास और सेन को काशी में रहकर, सुरसुरानंद को पंजाब में, भावानंद को दक्षिण में, नरहर्यानंद को उत्कल में, गालवानंद को कश्मीर में, पीपा तथा योगानंद को गुजरात में रहकर समाजसेवा, धर्म एवं भक्ति का प्रचार करने का आदेश दिया था।

स्वामी रामानंदजी के उपर्युक्त 12 शिष्यों में कबीर और रविदास के नाम हिंदी के संत भक्त कवियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इन दोनों में भी रविदास, कबीर से आयु में ज्येष्ठ हैं और भक्ति में भी श्रेष्ठ तथा अनुपम हैं। डा. हजारीप्रसाद द्विवेदीजी लिखते हैं– 'एक बार ब्रह्मज्ञान के विषय में कबीर से पूछा गया तो उन्होंने बताया कि मैं जब बच्चा था, मां की गोद में चढ़कर रास्ता पारकर आया हूं। रविदास से पूछो, वे बड़े थे और मां ने उनके सिर पर कुछ गट्ठर भी रख दिया था। वे ही रास्ते का मर्म बता सकते हैं।'

मैं तो आया मां की गोद में, क्या जानूं मारग क्या होय।
राह पूछो रैदास से, जिन गठरी लाई ढोय।

डा. द्विवेदीजी ने इस दोहे का भाव स्पष्ट करते हुए लिखा है :- 'ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि मां को जब कहीं जाना होता है तो वह सबसे नन्हें शिशु को गोद में लेकर चल पड़ती है, लेकिन जो बड़ा बच्चा होता है उसे छोटी-मोटी गठरी भी दे देती है और वह पीछे-पीछे चलता है। गठरी ढोने के कारण उसे श्रम करना पड़ता है और रास्ते का एक-एक पग उनके अनुभव में आ जाता है। रविदास ऐसे ही भक्त थे जिन्होंने परिश्रम से अपनी रोजी-रोटी का काम भी किया था और साथ ही साथ भगवत्–भक्ति के कठिनाई भरे रास्ते पर चलते रहे'। (रविदास दर्शन–दो शब्द) जहां संत कबीर ने 'साधन मां रविदास संत हैं' कहकर रविदासजी की संतों में श्रेष्ठता बताई है, वहां रविदासजी की अपनी पवित्र वाणी और उनके जीवन में घटी अनेक घटनाएं यह सिद्ध करती हैं कि रविदासजी अपने गुरु स्वामी रामानंदजी के विचारों के महान समर्थक और एक बहुत बड़े प्रचारक थे।

2

गुरु रविदास–जीवन

स्वामी रामानंदजी के शिष्यों में प्रमुख, मध्यकालीन भक्तिधारा के परम शांत सिद्ध संतकवि गुरु रविदासजी का जन्म चंद्रवंशी (चंवर) चर्मकार जाति में बनारस के समीप भांडूर अथवा मंडूर ग्राम में हुआ था जिसका प्राचीन नाम मंडुआ डीह है और जो बनारस छावनी से पश्चिम की ओर लगभग तीन-चार किलोमीटर के अंतर पर ग्रैंड ट्रंक रोड पर पड़ता है। ऐसा कहा जाता है कि यह स्थान अनेक शताब्दियों से चर्मकार जाति का मुख्य केन्द्र रहा है। इस स्थान से थोड़ी ही दूर पर लहरतारा नामक वह स्थान है जो रविदासजी के समकालीन तथा गुरु भाई संत कबीर के जन्म से संबंधित बताया जाता है। लहरतारा में आज भी रविदासियों की एक बस्ती है। कहते हैं कि आज जो परिवार लहरतारा नामक स्थान पर रहते हैं उनमें से अधिकतर लोगों के पूर्वज मंडुआ डीह में ही रहते थे। गुरु रविदासजी ने स्वयं अपने दो पदों में कहा है–

1. मेरी जाति कुट बांढला ढोर ढुवंता,
   नितहिं बनारसी आस पासा।
2. जाके कुटुंब के ढेढ़ सभ ढोर ढुंवता,
   फिरहिं अजहुं बनारसी आस पासा।।

रविदासजी के पिता का जन्म-नाम मानदास था। भविष्य पुराण (खंड 4. अ. 18, श्लोक 57) में स्पष्ट लिखा है–

मानदासस्य पुत्रो रविदास इति विश्रुतः।

–मानदास का पुत्र रविदास नाम से विख्यात हुआ। किंतु रविदासजी के पिता राघव अथवा रघु नाम से ही प्रसिद्ध थे। उनकी माता का नाम करमा देवी था।

विद्वानों ने रविदासजी की जन्म तिथि के विषय में विभिन्न मत प्रकट किए हैं। परंतु परंपरागत अनुश्रुति तथा रविदासी संतों के अनुसार इनकी जन्म तिथि रविवार माघ पूर्णिमा 1433 वि. मानी गई हैं। रविदासी भाई प्रति वर्ष इसी दिन रविदासजी की पुण्य जन्म-तिथि मनाते आए हैं। इस संबंध में रविदासियों में संत कर्मदासजी का निम्नलिखित दोहा प्रचलित है –

चौदह सै तैंतीस की, माघ सुदी पंदरास ।
दुखियों के कल्याण हित, प्रगटे स्री रविदास ।।

रविदासजी चर्मकार जाति में अवतरित हुए थे और अपने चमार होने का उन्होंने अपनी वाणी में निःसंकोच एवं बारबार उल्लेख किया है :-

1. जैसा रंग कुसुंभ का, तैसा इह संसार ।
मेरे रमईए रंग मजीठ का, कहु रविदास **चमार** ।।
2. कहि रविदास खलास **चमारा**,
जो हम सहरी सो मीत हमारा ।।
3. इक नजिर सो सभ कूं देखइ, सरिष्टि का सिरजन हारा ।
सब घट व्यापक अलख निरंजन, कहि रविदास **चमारा** ।।
4. मस्जिद सों कछु घिन नहीं, मंदिर सों नहीं पिआर ।
दोउ महं अल्लह राम नहीं, कह रविदास **चमार** ।।

रविदासजी की जन्म संबंधी कथा का वर्णन भक्तमाल के टीकाओं में और परचई (जीवनी) साहित्य में कुछ ऐसे ढंग से किया गया है जिसे आज के वैज्ञानिक युग में लोग आसानी से स्वीकार नहीं कर पाते । रविदासजी के जन्म के समय कुछ विचित्र चमत्कार देखने में आए थे, ऐसा उनके सभी श्रद्धालु भक्त परंपराओं से मानते चले आ रहे हैं । कुछ लोग यह भी मानते हैं कि रविदासजी का जन्म चमार के घर में उनके ही पूर्व जन्म के गुरु रामानंदजी के शाप से ही हुआ था और रविदासजी ने अपने पूर्व जन्म का स्मरण करके ही अपनी माता करमा देवी के स्तन से दूध-पान नहीं किया था । माता के स्तन से दूध तब पिया जब स्वामी रामानंदजी ने रघु चमार के घर आकर नवजात बालक को आशीर्वाद दिया । रविवार के दिन जन्म लेने के कारण बालक का नाम रविदास रखा गया । इस घटना का उल्लेख प्रियादासजी ने अपनी भक्तमाल की टीका में इस प्रकार किया है–

माता दूध प्यावे याको छुयोऊ न भावे,
सुधि आवे सब पाछिलीसु सेवा को प्रताप है ।
भई नभ बानी रामानंद मन जानी,
बड़ो दंड दियो भानी बेगि आये चल्यो आप है ।।

दुखी पिता माता देखि धाय लपटाय पाय,
कीजिए उपाय कियो सिष्य गयो पाप है ।
स्तन पान कियो जियो लियो उन्ह इस जानि,
निपट अजानि फेरि भूले भयो ताप है ।।

संत अनंतदास ने 'रैदास की परचई' में रविदासजी के चमार के घर में जन्म लेने का कारण पूर्व जन्म में ब्राह्मण होने पर भी मांस खाना न छोड़ना बताया है ।

रविदासजी ने स्वयं अपने एक पद में चमार के घर जन्म लेने का कारण पूर्व जन्म में 'प्रभु भक्ति' न करना बताया है–

जाति ओछी पाती ओछी, ओछा जन्म हमारा ।
राजाराम की सेव न कीन्हीं, कहि 'रविदास' चमारा ।।

कुछ भी हो यह बात तो स्पष्ट है कि रविदासजी का जन्म एक 'चमार' के घर में हुआ था । वे एक अति श्रेष्ठ आत्मा थे जिन्होंने स्वामी रामानंद से दीक्षा लेकर मानव कल्याण का बीड़ा उठाया था और लोगों को प्रभु-भक्ति के मार्ग पर चलने का उपदेश दिया था । साथ ही उन्हें आचार-व्यवहार और कर्म की महत्ता समझाई थी ।

रविदासजी का जन्म जिस परिवार में हुआ था वह चर्मकार व्यवसाय करता था, जिसमें चमड़े की रंगाई, कमाई तथा चमड़े की काठी, जूती, लगाम आदि वस्तुओं का निर्माण और उनपर जरी-तिल्ले का काम होता था । उन्होंने एक स्थान पर कहा है–

नागर जनां, मेरी जाति विख्यात चमारं ।

इस संकेत से यह स्पष्ट है कि रविदासजी जिस चमार जाति में उत्पन्न हुए थे वह अपने समय में अपने उन्नत व्यवसाय के कारण पर्याप्त समृद्ध तथा ख्याति प्राप्त था और साथ ही वह परिवार आस्तिक एवं धार्मिक आचार-व्यवहार वाला था । उनके माता-पिता तथा परिवार के अन्य लोग भी भगवत्परायण थे । ऐसे वातावरण वाले परिवार में पालित-पोषित बालक रविदास का भगवद्भक्ति की ओर झुकाव होना नितांत स्वाभाविक था । दूसरे, पूर्वजन्म के पुण्यों के फलस्वरूप उन्हें प्रभु-भक्ति जन्म से ही प्राप्त थी । उन्होंने अपनी वाणी में बार-बार भक्ति को पुण्य कर्मों का फल कहा है–

कहै रविदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै ।
इहिं पद कहत सुनत नहीं आवै, कहै रविदास सुक्रित को पावै ।

इस प्रकार बालक रविदास को जन्म के साथ ही प्रभु-भक्ति की प्रेरणा मिली थी । मेजर ब्रिग्स (दि चमार्स, पृ. 205) का कहना है 'ये 18 वर्ष की आयु में राम आदि की आराधना करने लगे थे ।'

किंतु अनंतदास तो लिखते हैं–

दिन दिन हिरदै हरि बिसवासु ।
दिन दिन बड़ौ भयौ रविदासु ।।

बरस सात को भयौ है जब ही ।
नौधा भगति दिढ़ाई तब ही ।।
हरि भगतिन की सेवा करै ।
सत गुर कहीस सीख न टरै ।।

बालक रविदास रात-दिन भजन-कीर्तन, पूजा-पाठ, साधु-संतों की सेवा और उनके सत्कार में लगा रहता । ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उसकी लगन प्रभु में अधिकाधिक होती गई । ऐसे ही सात वर्ष और बीत गए—

समा सात और चलि गया ।
बहोत प्रीति केसौं सौं भया ।।

पुत्र को इस प्रकार सांसारिकता से सर्वथा उपराम तथा विरक्त देखकर माता-पिता को चिंता हो गई । इस अवस्था में उन्होंने रविदासजी को सांसारिक बंधन में शीघ्रातिशीघ्र बांध देना ही उचित समझा और इनका विवाह कर दिया । रविदास की पत्नी का नाम लोना अथवा लोणा देवी था । लोना चर्मकारों की एक देवी का भी नाम है । वे इसकी पूजा करते हैं और उससे अपने परिवार के लोगों की सुख-शांति की प्रार्थना करते हैं । इस समाज में प्रचलित जादू-टोनों की प्रक्रियाओं के मंत्रों के साथ लोना का भी नाम आता है । मध्यकाल में लोना चमारी की बड़ी ख्याति थी और अनेक प्रकार की जादू-टोने की कथाएं इसके नाम से प्रचलित हो गई थीं । हिंदी के सुप्रसिद्ध महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी (1483-1599 वि.) ने अपने 'पद्मावत' काव्य में लोना चमारी का तंत्र-मंत्र (जादू-टोना) सिखाने वाली कामरूप देश की जादूगरनी के रूप में उल्लेख किया है । इसका कारण अनुमानतः यही हो सकता है कि लोना देवी रविदासजी की पत्नी थी । पति के संबंध से पत्नी का भी विख्यात होना बिलकुल स्वाभाविक बात थी और इसी से उनके नाम के साथ अनेक प्रकार की किंवदंतियों का जुड़ जाना भी असंभव नहीं लगता ।

'रविदास पुराण' के आधार पर यह माना जाता है कि रविदासजी का एक पुत्र था जसका नाम विजयदास था । इसके अतिरिक्त उनकी संतान का उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता । इसलिए इस विषय में प्रामाणिक तथा अधिकृत रूप से इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता ।

जिस प्रकार कबीर के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि—

मसि कागद छूओ नहीं, कलम गही नहिं हाथ ।
चारिउं जुगन महातम, कबीर मुखहिं जनाई बात ।।

उसी तरह रविदासजी के विषय में भी संत कर्मदास ने लिखा–

पंडित गुनी कोउ ढिग न बिठाये ।
वेदशास्त्र किन्हूं न पढ़ाये ।।
अतंरमुखि जउ कीन्हों ध्याना । चारिउं जुगन का पयो गिआना ।
कागज कलम मसि कछु नहिं जाना । सतगुर दीन्हों पूरन गियाना ।।

जिस तरह यह नहीं कहा जा सकता कि कबीर सर्वथा निरक्षर थे, उसी तरह रविदासजी के बारे में यह बात भी कही जा सकती है कि उन्हें तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के कारण निम्न समझी जानेवाली चमार जाति का होने से विधिवत किसी पाठशाला में वेद-शास्त्रादि का गुरुमुख से अध्ययन करने का सुयोग भले ही न मिला हो, किंतु उनकी वाणी तथा उनके जीवन से संबंधित घटनाओं के अध्ययन से यह प्रमाणित अवश्य होता है कि रविदासजी को वेद-उपनिषद्, गीता, भागवत, पुराण आदि के विषयों एवं उनमें व्यक्त विचारों की पूर्ण जानकारी थी । इनके उदाहरण हमें उनकी वाणी में स्थान-स्थान पर प्राप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त वे तत्कालीन धार्मिक साधनाओं से भी पूर्णतया परिचित थे । इस संपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति उन्हें परंपरागत संस्कार, सत्संग और व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से प्राप्त हुई जान पड़ती है ।

जन्मजात प्रभुभक्त होने के कारण रविदासजी ने कृत्रिम अध्ययन की व्यर्थता प्रकट की है और अपने मन को प्रभु की पाठशाला में 'राम नाम' पढ़ाने का रूपक बांधकर कहा है–

चलि मन हरि चटसाल पढ़ाऊं ।
गुरु की सांटि ग्यान का अच्छर,
बिसरै तौ सहज समाधि लगाऊं ।।टेक ।।
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनि,
रोम रोम सों लिखि अंक दिखाऊं ।
एहि बिधि मुक्त भए सनकादिक,
रिदै बिदारि प्रकास दिखाऊं ।।
कागद कंवल मति मसि करि निरमल,
बिन रसना निसि दिन गुन गाऊं ।
कहै 'रविदास' राम जपि भाई,
संत साखि दैं बहुरि न आऊं ।।

"प्रह्लाद चरित" में तो रविदासजी भक्त प्रह्लाद के माध्यम से स्पष्ट ही कह देते हैं–

मैं पढ़यौ राम को नाम और दूजा नहि जानौं ।
ररा ममा छांड़ि तीसरो अंक न आनौं ।।
कहा पढ़ावै बावरे और सकल जंजार ।
भौसागर जमलोक तैं मोहिं कौन लगावै पार ।।

फारसी का थोड़ा-बहुत अध्ययन रविदासजी ने किसी मौलवी के संपर्क में आकर अवश्य किया होगा, क्योंकि फारसी का जानना तत्कालीन युग में आवश्यक था और उसके लिए पर्याप्त सुविधा एवं सुअवसर भी था। रविदास जी के कुछ ऐसे पद भी हैं जिनमें अरबी-फारसी शब्दों का आधिक्य है। उदाहरणार्थ एक पद देखिए–

खालिक सिकस्ता मैं तेरा।
दे दीदार उमेदवार बेकरार जीउ मेरा।। टेक।।
अवलि आखिर इलत आदम, मौज फरिस्ता बंदा।
जिसकी पनह पीर पैकंबर, मैं गरीब क्या गंदा।।
तू हाजरा हूजरि जोग येक, अवर नहीं दूजा।
जिसके इसक आसिरा नहीं, क्या नमाज क्या पूजा।।
नालीदोज हनोज बेबखत, किमिं खिजमतगार तुम्हारा।
दरमांदा दरि ज्वाब न पावै, कहै 'रविदास' बिचारा।

रविदासजी की भांति कबीर, मलूकदास, दादूदयाल आदि संतों ने भी अपने पदों में फारसी शब्दों का प्रयोग किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि इन संतों ने अपनी वाणियों में सभी भाषाओं के शब्दों का खुले दिल से प्रयोग किया है जो कि उनके उन भाषाओं के ज्ञान का परिचायक है।

भविष्य पुराण (खंड 4, अ. 18 श्लोक 57-60) में रविदासजी के जन्म लेने और रामानंदजी का शिष्य बनने की कथा इस प्रकार आई है–

चर्मकार गृहे जातो द्वितीयः पिंगलापतिः।
मानदासस्य तनयो रविदास इति विश्रुतः।
पुरीं काशीं समागम्य कबीरं रामतत्परम्।
जित्वा मतविवादेन शंकराचार्यमागताः।।
तयोर्विवादममवद होरात्रं मतान्तरे।
पराजितः स रविदासो नत्वा तं द्विजसत्तमम्।
रामानंदमुपागम्य तस्य शिष्यत्वमागतः।।

–एक बार शनि, राहु, केतु के अत्याचार पापाचार को दूर करने के लिए सूर्य ने ने दो पुत्रों को पृथ्वी पर भेजा। पहला पुत्र इड़ापति कसाई के घर सघन नाम से अवतरित हुआ। दूसरा पिंगलापति मानदास के घर रविदास नाम से विख्यात हुआ। रविदास ने काशी जाकर रामभक्त कबीर को वाद-विवाद में पराजित किया और फिर वह शंकराचार्य के पास आया। दोनों में एक दिन और एक रात निरंतर शास्त्रार्थ होता रहा। अंत में उनसे पराजित होकर रविदास रामानंद के पास गया और उनका शिष्य बन गया।

उपर्युक्त कथा का दूसरा भाव चाहे कुछ रहा हो, इससे रविदास जी का रामानंदजी का शिष्य होना प्रमाणित होता है। स्वामी रामानंद जैसे मानवतावादी उदार विद्वान गुरु के समीप जाकर जिज्ञासु एवं सुपात्र रविदास का शास्त्राध्ययन का कार्य अवश्य संपन्न हुआ होगा, ऐसा अनुमान लगाना असंगत नहीं है।

रविदासजी जन्मजात भक्त थे। अतः वैवाहिक बंधन में बांध दिए जाने पर भी उनकी दिनचर्या पूर्ववत ही रही। उनकी साधु-सेवा, सत्संग एवं ज्ञानार्जन वृत्ति में कोई अंतर नहीं आया। विपरीत इसके उनकी प्रवृत्ति भक्ति की ओर उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। उनकी पत्नी लोना उनके अनुकूल ही मिली। वह रविदासजी के इन धर्म-कर्म के कार्यों में बाधक न होकर साधक सिद्ध हुई। रविदासजी अपने पिता के साथ व्यवसाय कार्य करते थे। उन्हें वहां से जो कुछ भी मिलता उसे वे साधु-सेवा में खुले हाथों व्यय कर देते थे। पिता को उनका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता था। इस प्रसंग में राजा जसवंतसिंह अपनी भक्तमाल की टीका में लिखते हैं :-

बाल बैस रविदास को,
कीनों पिता बिबाह।
बड़ो भयो देखि कर्म नित,
कह्यो खाट कर खाह ।।
कह्यो खाट कर खाहि,
रास हमरे गृह जोई।
तांकी पनहीं बनाई,
देइ साधन सभ खोई ।।

रविदासजी के पिता ने उन्हें बहुत डराया, धमकाया और समझाया कि वह अपने कुल के व्यवसाय को ठीक ढंग से चलाए ताकि उसकी आमदन से घर-गृहस्थी चल सके। परंतु, रविदासजी पर पिता की इस ताड़ना का कोई असर न हुआ और वे जो भी कमाते वही संत-सेवा में लगा देते। इस प्रसंग में संत नित्यानंद ने अपने भक्तमाल में लिखा है:-

पिता त्रास दै बहु समझावै।
कुल करनी करि कछु न कमावै ।।
बहु आदर करि संत बोलावै।
मिले जो घर मैं सब भुगतावै ।।

इस व्यवहार के कारण रविदास अपने परिवार तथा संबंधियों द्वारा बिगड़ा हुआ बालक समझा जाने लगा। इस स्थिति का वे अपने एक पद में प्रसंगवश उल्लेख करते

हुए भाव-विह्वल होकर प्रभु से पुकार करते हैं–

नरहरि, प्रगटसि नाहो प्रगटसि ना हो, दीनदयाल ।
जनमत ही तैं हौं बिगरान, हौं कछु बूझत बहुरि सयान ।
परिवार बिमुख मोहिं लागि, कुछ समुझि परत नहिं जागि ।।

जब रविदासजी ने अपनी संत-सेवा की आदत में कोई तबदीली न की तो उनके पिता ने रुष्ट होकर इन्हें परिवार से पृथक कर दिया। इस संबंध में प्रियादास जी लिखते हैं–

बड़ेई रविदास हरिदासनि सों प्रीति करी,
पिता न सुहाई दई ठौर पिछवार हीं ।
हुतो घनमाल कन दियोइन हाल,
तियापति सुखजाल अरु कियो जब न्यारहीं ।।
गाठैं पगदासी कहूं बात न प्रकासी,
ल्यावैं खाल करें जूती साधु संत को संभारहीं ।
डारी एक छानी कियो सेवा को सुस्थान,
रहे चौड़े आप जानि बांटि पावे यहि धारहीं ।।

घर से पृथक किए जाने पर पिता द्वारा दी गई पिछवाड़े की भूमि में एक फूस की कुटिया छवाकर साधु-संतों की सेवा तथा भगवत भजन करते हुए रविदासजी, पत्नी सहित वहां रहने लगे और परम वैष्णव भक्त का जीवन व्यतीत करने लगे । उनकी इस उच्चावस्था को लक्ष्य करके संत नित्यानंद ने लिखा है–

नफा मिलै तामै करै हरि संतन सनमान ।
परम भागवत जन भयो श्री रविदास सुजान ।।

रविदासजी को जब पिता ने पृथक कर दिया तो वे अत्यंत दरिद्रता का जीवन व्यतीत करने लगे । उनकी इस निपट दरिद्रावस्था को देखकर लोग उनकी हंसी उड़ाते, परंतु परम संतोषी और भगवत भक्ति में लीन रविदासजी ने इसकी न तो कभी चिंता की और न अपनी संत-सेवा की आदत ही को बदला । रविदासजी को अपने इस जीवन पर दुख तो कभी नहीं हुआ, परंतु उन्होंने प्रसंगवश इसका संकेत अपनी वाणी में देते हुए कहा–

1. हम अपराधी नीच घरि जनमै, कुटुंब लोग करें हांसी रे ।
2. दारिद देखि सभ कौ हंसै, ऐसी दसा हमारी ।

रविदासजी ने अपने पदों में अपने लोक जीवन को ही प्रकट किया है, भगवद्-भक्ति को नहीं। उन्होंने धन तथा सांसारिक ऐश्वर्य को बड़प्पन का चिह्न कभी नहीं माना । वे तो अपने पैत्रिक धंधे जूते बनाने और गांठने के काम द्वारा अपनी रोजी-रोटी कमाकर खाने

और साधु-संतों की सेवा में लगे रहने में ही परम आनंद मानते थे। अपना काम करते हुए भी वे सत्संग और भजन-कीर्तन चलाते रहते थे। एक सच्चे संत की भांति वे प्रभु-प्रेम में निमग्न रहते हुए सांसारिक सुख एवं धन संपत्ति को जरा भी महत्व नहीं देते थे, क्योंकि उन्होंने तो 'नाम-धन' प्राप्त कर लिया था जिसके सामने सब कुछ नीरस और सारहीन है। उन्होंने कहा भी है–

तुझहि चरन अरबिंद भवन मन,
पान करत पायो पायो रामइया धन।
संपति बिपति पटल माया धन,
तामहिं मगन न होत तेरो जन।
कहा भयो जउ तन भयो छिन छिन,
प्रेम जाइ तउ डरपै तेरो जन॥

गुरु रविदासजी परम संतोषी व्यक्ति थे। उनकी निस्पृहता एवं संतुष्ट जीवन के विषय में एक कथा प्रसिद्ध है। एक बार एक साधु इनके यहां आया। रविदासजी की साधु-सेवा एवं भगवद्-भक्ति से प्रभावित होकर इनकी अति दरिद्रावस्था और कष्टमय जीवन देखकर वह इन्हें पारसमणि देते हुए बोला : 'इसे संभालकर रख लो। इससे लोहा छूकर सोना बन जाएगा।' लेकिन, रविदासजी ने उसे लेने से इंकार कर दिया और कहा कि महाराज :

मेरे धन राम, कछु पाथर न सरै काम।
दाम मैं चाहौं, डारौं तन वारिकै॥

साधु ने समझा कदाचित् रविदास को विश्वास नहीं हुआ। इसलिए उसने जूते बनाने के औजार रांबी को पारस से छुआकर सोना बनाकर प्रत्यक्ष दिखा दिया। रविदास जी ने पारस लेना फिर भी अस्वीकार किया और कहा–

माधवे ! पारस मनि लइ जाऊ।
मोहिं सोने का नहिं चाऊ॥

अंत में साधु यह कहकर 'इसे जब चाहो प्रयोग में ले आना' पारस को छप्पर में एक स्थान पर खोंसकर चला गया। कहते हैं कि तेरह मास पश्चात साधु भ्रमण करता हुआ फिर रविदासजी के पास पहुंचा तो उन्हें उसी प्रकार दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते देख पारस के विषय में पूछने लगा। रविदासजी ने उत्तर दिया : 'महाराज, आप जहां रख गए थे, वहीं होगा।' साधु पारस को छप्पर में यथास्थान वैसे ही पाकर उनकी निस्पृहता एवं अनासक्ति देख विस्मित रह गया।

प्रियादासजी का कथन है कि प्रभु स्वयं ही साधु का वेश धारण करके भक्त की सहायता तथा उसकी परीक्षा लेने आए थे।

अपना धर्म समझता था वह रविदास किसी की दी हुई पारसमणि लेकर लोभ और लालच में आकर अपने धर्म-मार्ग से भ्रष्ट क्यों होता? रविदासजी तो अपने हाथ से काम करने को भी प्रभु मिलने का एक बड़ा साधन मानते हैं। उन्होंने अपने इस दृढ़ विश्वास को अपनी साखी में प्रकट करते हुए कहा–

जिह्वा सों ओंकार जप, हत्थन सों कर कार ।
राम मिलहिं घर आइ कर, कहि 'रविदास' विचार ।।

अपने इस विश्वास के अनुकूल ही रविदासजी जूते गांठते हुए प्रेम-विह्ल वाणी में हरिकीर्तन करते रहते। 'रविदास की परचई' के लेखक संत धर्मदास (भाई धर्मसिंह) ने, जो गुरु गोविंद सिंहजी महाराज के 'पांच प्यारों' में से एक थे, रविदासजी के रहन-सहन, लोक-व्यवहार तथा प्रभु परायण जीवन के विषय में लिखा है–

अधिक प्रेम रविदास लगाना ।
जगत की उर में भया दिवाना ।।
बैठि बजार पनियां सों गांडै ।
और प्रेम मगन इत उत को हांडै ।।
जो कोई कछु देइ सो लेई ।
जो देई नहीं यूं ही गंउ देई ।
ऊंचे कर कबहूं न पसारै ।
भावै को जावै सिर मारै ।।

इस प्रकार के अनुपम भक्ति-भाव, सात्विक विचार, उदार एवं शांत स्वभाव तथा निस्पृह-संतोषी जीवन के कारण रविदासजी की गणना प्रसिद्ध भक्तों में होने लगी। संत कबीर ने संत के विषय में कहा–

निर्बैरी निहकामता, सांई सेती नेह ।
विषयां सू न्यारा रहे, संतनि की मति एह ।।

रविदासजी ऐसे ही निर्बैरी, निष्काम, सांई के स्नेह में डूबे हुए गृहस्थ किंतु विरक्त संत थे।

रविदासजी अपने गुरु रामानंदजी के साथ धर्म प्रचार के निमित्त की गई यात्राओं में भी साथ उनकी रहा करते थे। गांगरौनगढ़ के राजा पीपा ने गुरु रामानंदजी को एक बार अपने यहां आमंत्रित किया तो वे अपने चालीस शिष्यों तथा सेवकों को साथ लेकर वहां गये। इनमें कबीर और रविदास भी थे। प्रियादासजी इस प्रसंग का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

कबीर रविदास आदि दास सब संग लिये,
आये पुर पास पीपा पालकी लै आयौ है ।

करी साष्टांग न्यारी न्यारी बिनय साधुन को,
धन को लुटाय सो समाज पधरायौ है ।।
ऐसी करी सेवा बहु मेवा नाना राग भोग,
बानी के न जोग भाग कापै जात गायो है ।
जानी भक्ति रीति घर रहौ कै अतीत होहु,
करि कै प्रतीति गुरुपग लगि धायौ है ।।

"प्रसंग पारिजात" में वर्णन आता है कि स्वामी रामानंदजी गांगरौनगढ़ से जगन्नाथपुरी गए । वहां जगन्नाथजी ने बटु-रूप धारण करके उनका स्वागत किया । इसके पश्चात रामेश्वर जाकर स्वामी जी ने अपने शिष्यों सहित मंदिर में प्रवेश कर शंकरजी के दर्शन किए । छुआछूत में विश्वास रखने वाले ब्राह्मण कबीर जुलाहे और रविदास चमार को देखकर उनसे घृणा करने लगे । ब्राह्मणों ने उनके साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करना भी अस्वीकार किया, किंतु जब प्रत्येक के मध्य एक-एक रविदास को देखा तो उनके सिद्ध-रूप को देखकर हैरान रह गए ।

रविदासजी जन्मजात ब्रह्मज्ञानी भक्त थे, लेकिन अपने गुरु रामानंदजी की यात्राओं में उनके साथ रहने और लगातार उनका सत्संग करने तथा उनसे ज्ञान चर्चा करते रहने के कारण उनके ज्ञानचक्षु भी पूर्णतया खुल गए । उनके शास्त्र-ज्ञान में परिपूर्णता और विचारों में परम ज्ञानियों की सी गंभीरता आ गई ।

इस सत्संग, स्वाध्याय एवं श्रवण का परिणाम यह हुआ कि रविदासजी स्वयं भी गंभीर प्रवचन करने लगे । उनके प्रवचनों में वेदों, उपनिषदों एवं दर्शनशास्त्रों की व्याख्या वचनों तथा उद्धरणों सहित सुनाई देने लगी । आध्यात्मिक विषयों पर वाद-विवाद होता । विद्वान लोग भी इनके तर्कपूर्ण समाधान सुनकर दंग रह जाते और प्रभावित हुए बिना न रहते ।

संवत 1467 वि. में स्वामी रामानंदजी की इह लीला समाप्त हो गई । इसके पश्चात उनके आज्ञानुसार रविदासजी उत्तरी भारत में और विशेषतया बनारस में रहकर धर्मप्रचार एवं समाज-सुधार का कार्य करने लगे । लेकिन, उनकी आर्थिक स्थिति वैसी ही बनी रही । जूतियां बनाने और गांठने का कार्य करने से जो धन प्राप्त होता, उसी से वे साधुसेवा तथा अपना जीवन निर्वाह करते ।

साधु अथवा साधुरूप भगवान द्वारा दी गई पारसमणि के अस्वीकार करने की कथा का पीछे उल्लेख किया गया है । प्रियादासजी उससे आगे की कथा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रविदासजी ने पारस स्वीकार नहीं किया तो प्रभु ने अपने भक्त के कष्टों को दूर करने के लिए एक अन्य उपाय सोचा । एक दिन प्रातःकाल पूजा के समय रविदासजी ने देखा कि पूजा की पिटारी में सोने की पांच मोहरें पड़ी हैं । मोहरें देखकर वे भयभीत हो उठे, मानो सांप देख लिया हो । वे यहां तक डर गए कि पूजा करने में भी भय खाने लगे । तब प्रभु ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि अपना हठ छोड़ो और मोहरों को हमारा

प्रसाद मानकर स्वीकार करो। तब रविदासजी ने भगवान की आज्ञा मानकर मोहरें ग्रहण कर लीं। उन्होंने इस धन से और भूमि लेकर एक सत्संग भवन, हरिभक्तों के ठहरने के लिए विशाल धर्मशाला और हरि मंदिर बनवाए। रविदासजी के दर्शन करने तथा उनके उपदेश सुनने के लिए दूर-दूर से लोग आने लगे। आने वाले हरि भक्तों को अतिथि भवन में ठहराया जाता और भोजनादि के उत्तम प्रबंध द्वारा उनकी सेवा तथा सत्कार किया जाता। आने वाले श्रद्धालु भक्तों एवं साधु-संत जनों में से बहुत से रविदासजी के शिष्य हो गए और इस प्रकार सभी उनका गुरुवत आदर-सत्कार करने लगे।

गुरु रविदासजी सत्संग भवन में बैठकर आध्यात्मिक प्रवचन तथा भजन-कीर्तन के साथ-साथ मानव-समानता के आधार पर समाज-सुधार का भी उपदेश देते। अपने गुरु रामानंदजी के क्रांतिकारी विचारों का प्रचार करते हुए वे कहते हैं—

जन्म जात कूं छांड़ि करि, करनी जान परधान।
इह्यौ वेद कौ धरम है, करै 'रविदास' बखान।।

वर्ण-व्यवस्था पर विचार करते हुए वे अपना मत प्रकट करते हैं—

बाह्मन खत्तरी बैस सूद, 'रविदास' जनम ते नांहि।
जो चाहइ सुबरन कऊ, पावई करमन मांहि।

और बताते हैं, कि—

'रविदास' जन्म के कारनै, होत न कोउ नीच।
नर कूं नीच करि डारि है, ओछे, करम कौ कीच।।

कभी-कभी तो रविदासजी साहसपूर्वक ऐसी घोषणा तक कर देते—

'रविदास' बाह्मन मति पूजिए, जउ होवे गुनहीन।
पूजहिं चरन चंडाल के, जउ होवै गुन परवीन।।

कुछ उच्चवर्ण के लोग रविदासजी की ख्याति सुनकर और उन्हें सम्मानित तथा पूजित होते देख पहले ही उनसे ईर्ष्या करने लगे थे। अब उस चमार की इस प्रकार की घोषणा से तो तिलमिला ही उठे और उनसे द्वेष भी करने लगे। अंत में उन्होंने एक 'चमार' द्वारा धर्मोपदेश के कार्य को धर्मविरुद्ध कहकर काशी नरेश वीरसिंहदेव बघेला से शिकायत की। राजा ने रविदासजी और उनके विरोधियों को दरबार में बुला भेजा। दोनों का वाद-विवाद हुआ जिसमें ब्राह्मण लोग पराजित हो गए। रविदासजी के युक्ति-युक्त एवं वैदिक परंपरा के अनुकूल विचारों को सुन राजा अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने शिकायत करने वालों को बहुत फटकारा और उन्हीं के ईर्ष्या द्वेष-पूर्ण आचरण को धर्मविरुद्ध बताया। रविदासजी का राजा ने गुरुवत सम्मान किया और उन्हें सेवा-सत्कार पूर्वक विदा किया।

इस घटना के पश्चात तो रविदासजी की ख्याति और सम्मान और भी बढ़ गए। यहां तक कि अब ब्राह्मण तथा उच्चवर्ण के लोग भी उनकी चरण-वंदना करने लगे। गुरु रविदासजी ने प्रभु-भक्ति की अद्‌भुत महिमा बताते हुए स्वयं अपने दो पदों में इस स्थिति का वर्णन किया है–

1. नागर जनां, मेरी जाति विख्यात चमारं।
रिदै राम गोबिंद गुन सारं ।।
मेरी जाति कुट बांढला,
ढोर ढुबंता नितहिं बानारसी आस पासा ।।
अब बिप्र प्रधान तिहिं करहिं डंडउति,
तेरे नाम सरणाइ 'रविदासानुदासा'।

2. हरि जपत तेऊ जनां पदम कंवलास पति,
तास समतुलि नहीं आन कोऊ।
जाके कुटुंब के ढेढ सम ढोर ढुवंता,
फिरहिं अजहुं बनारसी आस पासा ।।
आचार सहित बिप्र करहिं डंडउति,
तिन तनैं 'रविदास' दासानुदासा ।।

यह भी कहा जाता है कि काशी-नरेश के दरबार में वाद-विवाद में पराजित होने पर ब्राह्मणों ने एक अन्य प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा कि भगवान की मूर्ति को सिंहासन सहित सभा में लाया जाए जो अपनी भक्ति के बल पर आह्वान करके मूर्ति को सिंहासन से अपने पास बुला लेगा, वह सच्चा भक्त, सिद्ध तथा विजयी माना जायेगा। दोनों पक्षों ने बारी-बारी से भगवान का आह्वान किया। जब ब्राह्मणों की पुकार पर मूर्ति सिंहासन से हिली तक नहीं तब रविदासजी से कहा गया कि वे मूर्ति को सिंहासन से अपने पास बुलाएं। यद्यपि रविदासजी ऐसी करामात दिखाने में यकीन नहीं रखते थे, फिर भी उन्होंने राजा के आग्रह पर अपनी अश्रुमय विह्वल-वाणी में यह पद उचारा–

आयो आयो हौं देवाधिदेव, तुम सरन आयो।
सकल सुख की मूल जाकी नहीं समतूल, सो चरन मूल पायो ।।
लियो बिबिध जोनि वास जम की अगम त्रास,
तुम्हरे भजन बिन भ्रमत फिरयो ।।
माया मोह काम विषय लंपट निकाम यह,
अति दुस्तर दूर तर्‌यो ।।
तुम्हरे नांव बिसास छांड़िए आन आस,
संसारी धर्म मेरो मन न धीजै।

'रविदास' दास की सेवा मानहु देव,
पतित पावन नाम.आजु प्रकट कीजै ।।

संत भक्त पलटूदास ने भी इस घटना का उल्लेख अपने एक कवित्त में किया है–

नहाते त्रिकाल रोज पंडित अचारी बड़े,
सदा पट बसतर सूत अंग ना लगाई है ।।
पूजा नैबेद आरती करते हम बिधि बिधान,
चंदन औ तुलसी भली भांति से चढ़ाई है ।।
हारे हम कुलीन सब कोटि कोटि कै उपाय,
कैसे तुम ठाकुर हम अपने हूं न पाई है ।
'पलटुदास' देखो रीझ मेरे साहब की,
गये हैं कहां, जब रविदास ने बुलाई है ।।

रविदासजी की श्रद्धापूर्ण प्रार्थना भगवान ने स्वीकार की और मूर्ति उनकी गोद में आ विराजी। रविदास और मूर्ति के इस मिलन को देखकर दर्शक विस्मित रह गए और राजा वीरसिंह ने भी अपने सिंहासन से उठकर रविदासजी के चरण छुए। इस घटना के पश्चात लोगों की श्रद्धा-भक्ति रविदासजी में और भी बढ़ गई ।

इसी घटना के विषय में प्रियादासजी लिखते हैं–

बसत चितोर मांझ रानी इक झाली नाम,
नाम बिन कान खाली आनि शिष्य भई है ।
संग हुते बिप्र सुनि छिप्र तन आगि लागी,
भागी मति नृप आगे भीर सब गई है ।।
वैसे ही सिंहासन पै आईके बिराजै प्रभु,
पढ़े बेदबानी पै न आये यह नई है ।
पतित पावन नाम कीजिए प्रगट आजु,
गायी पद गोद आई बैठे भक्ति लई है ।

–चित्तौड़ की झाली नाम की रानी थी। उसने कानों से हरि का नाम कभी नहीं सुना था। वह काशी आकर रविदासजी की शिष्या बनी। साथ आए ब्राह्मणों ने यह सुना तो उनके तन-बदन में आग लग गई। वे सब काशी नरेश (वीरसिंह) के पास गए। उनके साथ लोगों की भीड़ भी वहां पहुंची। सिंहासन सहित भगवान की मूर्ति बुलाने की शर्त लगाई गई। ब्राह्मणों द्वारा वेदमंत्रों के उच्चारण से भी मूर्ति नहीं आई। रविदासजी ने 'पतित-पावन का नाम कीजिए प्रकट आज' यह पद गाया तो मूर्ति उनकी गोद में आ विराजी।

इस प्रकार प्रियादास ने राजा से शिकायत की घटना को 'चमार' रविदास द्वारा एक क्षत्राणी रानी, जिसका नाम रत्न कुंवरी था, दीक्षा देने से संबंधित बताया है।

उपर्युक्त कथा का एक अन्य रूप भी प्रचलित है। इसके अनुसार भगवान की मूर्ति के आह्वान में जय-पराजय के साथ एक शर्त और लगा दी गई। जो पक्ष पराजित होगा वह विजेता को पालकी में बिठाकर और पालकी को अपने कंधों पर उठाकर सारे नगर में घुमाएगा। शर्त में हारकर विरोधी लोगों ने गुरु रविदासजी की पालकी को कंधों पर उठाया और समस्त काशीनगर में घुमाया। हजारों श्रद्धालु रविदासजी की जय-जयकार करते हुए पालकी के पीछे चल रहे थे। इस विजय के पश्चात ही रविदासजी ने भगवान का गुणगान करते हुए कहा है–

ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै।
गरीब निवाजु गुसंइआं मेरा माथै छत्र धरै ।।टेक।।
जाकी छोति जगत कउ लागै ता पर तुही ढरै।
नीचह ऊंच करै मेरा गोबिंदु काहू ते न डरै ।।
नाम देव कबीरु तिलोचनु सधना सैनु तरै।
कहि रविदास सुनहु रे संतहु हरि जीउ ते सभै सरै ।।

किंवदंती है कि एक बार रविदासजी कुंभ पर्व पर प्रयाग गए हुए थे। मेले में दूर-दूर से साधु-संत, ब्राह्मण-पंडित, राजा-रजवाड़े और समान्य लोग भारी संख्या में उपस्थित थे। वहां गुरु रविदास को उपदेश करते देख और इन्हें 'चमार' जाति का जानकर कुछ जात्यभिमानी लोगों को बड़ी ईर्ष्या हुई। उनसे वाद-विवाद में ब्राह्मणों की कुछ भी पेश नहीं पड़ी। अंत में उन्होंने शर्त रखी जिसकी शालिग्राम की मूर्ति गंगा में ऊपर तैरती रहेगी और डूबेगी नहीं वह सच्चा प्रभु-भक्त सिद्ध होगा।

रविदासजी ने इस शर्त को मानने से इनकार करते हुए कहा कि इस तरह की शर्तें लगाना संतों और प्रभु-भक्तों को शोभा नहीं देता। जो सच्चे दिल से प्रभु की पूजा करता है, प्रभु उसी का है। प्रभु पूजा करना और उपदेश देना केवल ब्राह्मणों का ही काम नहीं है। यह सब कुछ तो प्रभु की अपार कृपा से ही होता है। आप अपने शालिग्राम की पूजा करें। मेरा शालिग्राम तो मेरी यह पत्थरी ही है जिसपर मेरी धर्म कमाई चलती है। जब ब्राह्मण अपनी जिद्द पर अड़े रहे तो रविदासजी ने कहा कि अच्छा पहले तुम अपने-अपने शालिग्राम गंगा में डालो उसके पश्चात मैं अपनी पत्थरी गंगा में डालूंगा। कहते हैं कि सभी ब्राह्मणों तथा उच्च वर्ण के लोगों की शालिग्राम की मूर्तियां गंगा में डालते ही डूब गई, किंतु रविदासजी की पत्थरी ऊपर ही तैरती रही। लोगों को संदेह हुआ कि वह लकड़ी की न हो। परीक्षा की गयी तो मालूम हुआ कि वह पत्थर की ही है। इस पर विरोधी बड़े लज्जित हुए और गुरु रविदास की भक्ति तथा सिद्धावस्था की चारों ओर धूम मच गई।

इसी प्रसंग से संबंधित एक अन्य जनश्रुति यह भी है कि गुरु रविदासजी वहां गंगातट पर बैठे 'राम नाम' द्वारा भव-सागर से पार हो जाने का उपदेश दे रहे थे। कुछ ईर्ष्यालु व्यक्तियों ने उन्हें नीचा दिखाने के लिए बीच में टोककर कहा कि 'महाराज' भव-सागर से पार होने की बात दूर रही, इससे जरा एक पत्थर को तो जल-धारा में तिराकर दिखाओ, इस बात की सचाई हम तब जानेंगे।' कहते हैं रविदासजी ने एक पत्थर की शिला उठाई और उस पर 'राम' लिखकर उसे जल-धारा में छोड़ दिया। लोगों ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि शिला सचमुच ही जल के ऊपर तैर रही है।

उपर्युक्त घटनाएं किसी न किसी रूप में अवश्य घटित हुई होंगी। गुरु रविदासजी के एक पद की निम्नलिखित पंक्तियां इस ओर स्पष्ट रूप से संकेत कर रही हैं –

बापुरा सत रविदास कहैं रे।
ग्यान विचारि चरन चित लावै, हरि कौ सरनि रहै रे।
पाती तोड़े पूजि रचावैं, तारन तरन कहैं रे।
मूरति मांहि बसै परमेसुर, तो पानी मांहि तिरैरे।
झूठी माया जग डहकाया, तीनि ताप दहै रे।
कहै 'रविदास' राम जपि रसना, माया कैसे संग रहे रे।

गुरु रविदासजी के उपदेश के लिए काशी के सभी वर्ग के लोग आते थे। इनमें समान्य स्तर के व्यक्ति ही नहीं–धनी, मानी लोग भी होते थे। वे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रविदासजी की वाणी का अमृतपान करते और उनके क्रांतिकारी विचारों को, विशेषतया उनके जाति-पांति विरोधी उपदेशों को अपने जीवन में अपनाकर उन्हें व्यावहारिक रूप भी देते थे। कुछ लोग ऐसे भी होते थे जो उपदेशों से शांति एवं तृप्ति प्राप्त करने के लिए तो लालायित रहते और इसी अभिप्राय से श्रद्धापूर्वक सत्संग में सम्मिलित भी होते थे, परंतु उनके सामाजिक विचारों को अपनाने में संस्कारवश संकोच करते थे। एक बार ऐसे ही संकुचित विचारों का एक सेठ गुरु रविदासजी का प्रवचन सुनने के लिए आया। सत्संग की समाप्ति पर भगवान का प्रसाद बांटा गया। सेठ ने प्रसाद ले तो लिया, लेकिन 'चमार का छुआ' जानकर घृणावश सब की आंखों से छिपाकर एक तरफ फेंक दिया। कहा जाता है कि भगवान के प्रसाद का अपमान करने पर उस सेठ को कोढ़ हो गया। अनेक उपचार करने पर भी वह ठीक नहीं हुआ तो अंत में वह गुरु रविदासजी की शरण में आया और सत्य-सत्य बात कहकर क्षमा याचना करने लगा। सर्वहितकारी परमदयालु संत गुरु ने उसके लिए प्रभु से प्रार्थना की। उनके आशीर्वाद से सेठ का कोढ़ दूर हो गया। साथ ही उसका घृणा भाव भी जाता रहा।

गुरु रविदासजी की करनी और कथनी में एकता थी। वे जो कुछ मुख से कहते वही क्रिया में भी लाते। यह उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता रही। रविदासजी

श्रम-साधना के महान समर्थक थे। वे इन विचारों के थे कि जहां तक अपना वश चले, जब तक अपने में शक्ति-सामर्थ्य हो, तब तक परिश्रमपूर्वक नेक कमाई करके अपना जीवन निर्वाह करते रहना चाहिए। वे श्रम को ईश्वर की संज्ञा देते थे और इसकी साधना को सुख-शांति का मूल तथा परम-पद प्राप्ति की कुंजी समझते थे। अपनी इस विचार-धारा के अनुसार ही उन्होंने कहा है कि—

'रविदास' हौं निज हत्थहिं, राखों रांबी आर।
सुकिरित ही मम धरम है, तारेगा भव पार।।

रविदासजी ने सिद्धावस्था की सर्वोच्च स्थिति पराभक्ति को प्राप्त करके भी अपना सुकिरित धर्म नहीं छोड़ा और वे अपनी कुटिया के आंगन में बैठकर लोगों के जूते गांठते रहते और साथ ही प्रभु कीर्तन में लगे रहते। रविदासजी की सत्संग की इस पद्धति ने जहां लोगों को सत्संग की ओर खींचा, वहां 'श्रमसाधना' का गौरव और सम्मान भी प्रतिष्ठित किया।

कथा प्रचलित है कि ऐसे ही समय एक बार एक ब्राह्मण किसी पर्व पर गंगा स्नान के लिए जाते हुए गुरु रविदासजी के पास अपनी टूटी जूती गंठवाने आया। उसने रविदासजी को जूती गंठवाने की एक दमड़ी (कौड़ी) देते हुए कहा—'भक्त जी, चलो गंगा नहाकर पर्व का पुण्य प्राप्त करें।' रविदासजी मुस्कराकर बोले "देवता, मैं तो गंगा माई के नित्य दर्शन करता हूं और घर बैठे ही गंगा स्नान का पुण्य लाभ लेता हूं। साथ ही मैं तो यह मानता हूं कि 'मन चंगा तो कठोती में गंगा।' परंतु पंडित जी फिर भी आप यह दमड़ी मेरी ओर से गंगा माई की भेंट कर देना।" ब्राह्मण ने गंगा पर जाकर रविदासजी की भेंट चढ़ाई तो गंगा माता ने हाथ बढ़ाकर भेंट स्वीकार की। साथ ही एक बहुमूल्य रत्न जड़ित सोने का कंगन देते हुए कहा—'यह कंगन भेंट की स्वीकृति के चिह्न स्वरूप रविदास को दे देना।' ब्राह्मण यह सब देखकर विस्मित रह गया, परंतु उसका मन बेईमान हो गया। पंडित ने लौटकर वह कंगन रविदास जी को न देकर बाजार में बनिए की दुकान पर बेच दिया। इस अद्भुत कंगन की बात राजा तक भी पहुंची। राजा ने वह कंगन मंगवाया तो उसकी अलौकिकता देखता ही रह गया और उसने अपनी रानी को कंगन दिखाया। रानी ने उस अनुपम कंगन को पहन लिया और प्रफुल्लित होकर वैसे ही दूसरे कंगन के लिए हठ कर बैठी। राजा ने कंगन बेचने वाले ब्राह्मण को दरबार में बुलाया तो उसने डरते-डरते जड़ाऊ कंगन प्राप्त करने की सारी घटना सुना दी। तब राजा ब्राह्मण को लेकर गुरु रविदासजी की शरण में पहुंचा और विनीत भाव से रानी के हठ की बात बताकर वैसा ही दूसरा कंगन प्रदान करने की प्रार्थना करने लगा। रविदासजी राजा से सारी घटना सुनते हुए मुस्कराते रहे। उन्होंने इस मुस्कराहट के बीच ही एक बार

ब्राह्मण की ओर क्षमा-पूर्ण दृष्टि से देखा और ध्यानमग्न हो गये। अंत में उन्होंने अपनी चमड़ा भिगोने की कठोती (कुंडी) में हाथ डाला और वैसा ही बहुमूल्य रत्न जड़ित कंगन निकालकर राजा को भेंट किया। सबने देखा कि कंगन पर रेत के कण लगे हुए हैं मानो वह गंगा नदी से निकाला गया हो। उपस्थित दर्शकगण रविदासजी की जय-जयकार कर उठे।

रविदासजी के जीवन में ऐसी अद्‌भुत घटनाएं लगातार घटती रहीं। इनसे उनकी कीर्ति उत्तरोत्तर फैलती गई। इससे आकृष्ट होकर भारत के सभी प्रदेशों से साधु-संत एवं गृहस्थ श्रद्धालु-भक्त–गण उनके दर्शन करने तथा उनके उपदेशामृत का पान करने आते। इसी अवसर पर वे उन्हें अपने-अपने प्रदेशों में पधारने का आग्रह पूर्ण निमंत्रण भी देते। गुरु रविदासजी अपने शिष्यों और श्रद्धालुओं की प्रार्थना एवं अनुरोध पर समय-समय पर उन प्रदेशों की धर्म-प्रचारार्थ यात्रा करते।

अपनी शिष्या झाली रानी रत्न कुंवरी के निमंत्रण पर गुरु रविदासजी चित्तौड़ की यात्रा पर गए। उस समय की एक विशेष घटना का उल्लेख करते हुए प्रियादासजी लिखते हैं–

गई घर झाली पुनि बोलि के पठायो अहो,
जैसे प्रतिपाली अब तैसें प्रतिपारिये।
आपहु पधारे उन बहु धन पट वारे,
बिप्र सुनि पांवधारे, सीधौ दै निवारिये।।
करिके रसोई द्विज भोजन करन बैठे,
द्वै द्वै मधि एक यौं रविदास को निहारिये।
देखि भई आंखैं दीन भाखैं सिख लाखैं भये,
स्वर्न को जनेऊ काढ्यो त्वचा कीनी न्यारियै।

–रानी झाली के निमंत्रण पर गुरु रविदासजी चित्तौड़ गये तो उसने उनका अपूर्व स्वागत किया और उनके आगमन के उपलक्ष्य में एक बड़ा भोज देने का आयोजन किया। किंतु ब्राह्मणों ने एक चमार के साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करना अस्वीकार कर दिया। इसपर उन्हें कच्चा सीधा दे दिया गया। जब ब्राह्मण लोग पंक्तियों में बैठकर भोजन करने लगे, तो उन्होंने देखा कि दो-दो के मध्य एक-एक रविदास बैठे हैं। गुरु रविदासजी का यह अलौकिक रूप देख वे आश्चर्यचकित रह गए। इतना ही नहीं रविदासजी ने अपनी छाती की त्वचा फाड़कर उन्हें यज्ञोपवीत दिखाया और इस प्रकार सत्य रूप में अपने ब्राह्मणत्व का परिचय दिया। यह देखकर लाखों व्यक्ति उनके शिष्य बन गए।

संत चरणदास (जन्म 1760 वि.) के प्रशिष्य संत नित्यानंद ने अपने 'भक्तमाल' के अंतर्गत 'श्री रविदास कथा' में लिखा है–

द्राविड़ देस भूप की रानी, सुनि रविदास भक्ति गुन खानी।
चेली भई तासु ढिग आई, दै रविदास भक्ति समुझाई।।

—और इस द्राविड़ देश के राजा की रानी शिष्या के निमंत्रण पर रविदासजी के आने पर भोज का आयोजन किया गया था।

यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह द्राविड़ देश के राजा की रानी शिष्या चित्तौड़ की झाली रानी शिष्या से भिन्न अथवा अभिन्न है। फिर भी इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि कोई दक्षिण के राजा की रानी रविदासजी की ख्याति सुनकर काशी आकर उनकी शिष्या बनी होगी। दक्षिण हैदराबाद के जिला औरंगाबाद के एलोरा नामक स्थान पर 'रविदास कुंड' और तिरुपति (आंध्र प्रदेश) में बालाजी पर्वत के नीचे वैकुंठ कोल तीर्थ स्थान पर रविदासजी की 'गद्दी' तथा 'समाधि' के अवशेष प्राप्त होते हैं। इन स्मारकों के साथ संत नित्यानंद के कथन का संबंध जोड़कर किसी सत्य पर पहुंचा जा सकता है।

गुरु रविदासजी के महान व्यक्तित्व, उदात्त विचार एवं भक्ति-साधना से तत्कालीन जनसामान्य ही नहीं, अपितु कबीर, सेन, धन्ना, नानक जैसे विख्यात संत साधक भी अत्यधिक प्रभावित एवं चमत्कृत थे। इन संत-भक्तों ने मुखर होकर गुरु रविदासजी की प्रशस्ति गायी है। इनकी परस्पर भेंट, विचारों का आदान-प्रदान, सत्संग-प्रवचन समय-समय पर संपन्न होते रहे। मीरा तो रविदासजी की शिष्या ही थी। उसने उनका 'गुरु' के रूप में बार-बार स्मरण किया है।

संत कबीर अपने जीवन काल में गुरु रविदासजी की भांति ही पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। उनका यश दूर-दूर तक फैला हुआ था। सैकड़ों नहीं हजारों लाखों की संख्या में हिंदू और मुसलमान उनके शिष्य एवं श्रद्धालु थे। गुरु रविदासजी ने अपनी वाणी में कबीर का नाम एक पहुंचे हुए प्रसिद्ध संत के रुप में अनेक बार लिया है :-

1. तिहूं रे लोक परसिध **कबीरा**।
2. नामदेव **कबीर** तिलोचन सधन सैनु तरे।
3. हरि के नाम **कबीर** उजागर। जनम-जनम के काटे कागर।
4. निरगुन को गुन देखो आई। देही सहित **कबीर** सिधाई।

संत कबीर की मृत्यु पर उनके हिंदू-मुसलमान शिष्यों में अंतिम संस्कार के लिए विवाद उठने पर शव के स्थान पर केवल 'पुष्प' प्राप्त होने की किंवदंती प्रसिद्ध ही है। अंतिम पंक्तियों का इसी तथ्य की ओर संकेत है। उपर्युक्त संकेतों से यही स्पष्ट है कि कबीरदास तथा सेन रविदासजी के जीवन काल में ही दिवंगत हो चुके थे। आयु में भी दोनों संत रविदास जी से कनिष्ठ थे।

कबीर ने 'साधन मा रविदास संत हैं' कहा है और उन्हें ध्रुव प्रह्लाद तथा शुकदेव जैसे उच्च एवं उत्तम कोटि के भक्तों में गिनाते हुए उन्हीं की भांति प्रभु-प्रेम सुधारस का पान करनेवाला बताया है।

सुखसागर में आय के, मत जा रे प्यासा ।
अजहुं समझ नर बावरे, जम करत निरासा ।
निरमल नीर भरे तेरे आगे, पीले स्वांसों स्वांसा ।
मृगतृस्ना जल छांड़ बावरे, करो सुधारस आसा ।।
ध्रुवप्रहलाद, शुकदेव पिया, और पिया **रविदासा** ।।
प्रेमहिं संत सदा मतवाला, एक प्रेम की आसा ।।
कहै 'कबीर' सुनो भाई साधो, मिट गई भय की बासा ।।

भक्त सेन का एक पद है–

वेदहि झूटा शास्त्रहि झूटा, भक्त कहां से पछानी ।
ज्या ज्या ब्रह्मा तू ही झूटा, झूटी साके न मानी ।।
गुरूड़ चढ़े जब विष्णु आया, साच भक्त मेरे दोही ।।
धन्य कबीर धन्य **रौहिदासा** गावै सेना न्हावी ।।

इसमें उन्होंने कबीर और रौहिदास (रविदास) को अपने सच्चे एवं संपूज्य भक्तों के रूप में स्मरण किया है ।

भविष्य पुराण के आधार पर रविदास का कबीर को वाद-विवाद में परास्त करने की कथा का उल्लेख पीछे हुआ है । भक्त सेन कृत 'कबीर रैदास संवाद' है जिसकी रचना 1502 वि. में हुई मानी जाती है । इसमें दोनों संतों की ब्रह्म के निराकार तथा साकार उपासना की प्रश्नोत्तर रूप में चर्चा का वर्णन है ।

रविदासजी सगुण रूप की महिमा का वर्णन करते हैं तो कबीरदास निराकर रूप का । विष्णु गरूड़ पर चढ़े हुए साकार होकर दोनों को दर्शन देते हैं । कबीर आत्म-निवेदन करके कृतकृत्य हो जाते हैं । संवाद का अंतिम अंश इस प्रकार है–

रैदास कहैं जी,
सो तुम गावों सो हूं गाऊं, तेरा ग्यांन विचारों ।
कहै रैदास कबीर गुर मेरा, मरम कर्म घोइ डारों ।।

कबीर कहैं जी,
मरम ही डार दे करम ही डारि दे, डारि दे जीव की दुबध्याई ।
आतमरांम करौ 'विश्रामा', हम दोन्यू गुर भाई ।।

रैदास कहैं जी,
माखण मथ्य रूप तत दिखलाया, भरम करम सब जाई ।
कहै रैदास पीर गुर मेरा, या मत तुम सूं पाई ।।

कबीर कहैं जी,
नृगुण ब्रह्म सकल को दाता, सो सुमरो चित लाई ।
को है लघु दीरघ को नांही, हम तुम दोन्यू गुर भाई ।
चल्या चल्या विष्णु जी आया,
जहां कबीर रैदासा ।
उठो कबीर सनमुख है देखो,
करौ कोंण की आसा ।
कहै कबीर जी सुणो ब्रिह्म जी, तुम हौ चतुर बबेकी ।
हम तौ बुरा भला जन तेरा, या तत बस्तक्य न देखी ।।
गरड़ चढ़े गोपाल कहत है, सति भक्त हमारे होई ।
सति कबीर घनि रैदासा, गावै सेना सोई ।

संत अनंतदास अपनी 'रैदास की परचई' में लिखते हैं कि झाली रानी को शिष्या बनाने पर जब ब्राह्मणों ने विरोध स्वरूप रविदासजी के द्वार पर धरना दिया तो बांधवगढ़ से सेन भी उन्हें समझाने आए थे और कबीर से सम्मति मांगने के लिए रविदास जी ने स्वयं संदेश भेजा था–

निज हर भगत सणि है नाई, बांध्योगढ़ तै वो चलि आई ।
ताकौ बचन न माने, करै मचलाई मरीबो ठानैं ।
भगत येक रैदासा पठायो, सो कबीर को बूझण आयो ।
बांभण पौलि हमारी मरि है, देहु मतौ हम कैसे करि हैं ।

इसी प्रकार धन्ना भगत ने एक पद में नामदेव के साथ कबीर, रविदास और सेन के भक्ति भाव तथा प्रसिद्धि से प्रभावित एवं प्रेरित होकर भक्ति की ओर उन्मुख होने की बात कही है–

गोबिंद गोबिंद गोबिंद संगि नामदेउ मन लीणा ।
आठ दाम को छीपरो होइओ लाखीणा ।
बुनना तनना तिआगि प्रीति चरन कबीरा ।
नीच कुला जोलाहरा भइओ गुनिअ गहीरा ।
रविदासु ढुंवंता ढोर नीति तिन्हि तिआगी माइआ ।
परगट होइआ साध संगि हरिदरसन पाइआ ।
सेनु नाई बुत कारिआ ओहु घरि घरि सुनिआ ।
हिरदे बसिआ पार बरह्म भगतां महिं गनिआ ।
इह विधि सुनिकै जाटरो उटि भगती लागा ।
मिले प्रतखि गुसईआं 'धन्ना' बड़भागा ।

गुरु रविदासजी तथा नानकदेवजी की भेंट बनारस में हुई थी। किंतु कुछ विद्वानों का मत है कि यह भेंट अयोध्या में हुई थी। इस साक्षात्कार का समय 1555 वि. माना जाता है जिस समय रविदासजी 122 वर्ष के थे। गुरु नानकदेव जी ने गुरु रविदासजी का नाम अपने पदों में बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिपूर्वक लिया है–

1. रविदास चमारू उस्तुति करे, हरि की रीति निमिख इक गाई।
पतित जाति उत्तम भया, चारि बरन पए पगि आई।
2. रविदास ध्याये प्रभु अनूप, गुरदेव 'नानक' गोबिंद रूप।

इनके अतिरिक्त गुरु रविदासजी के परवर्ती संतों-भक्तों ने भी उनकी भक्ति एवं सिद्धावस्था का अपनी वाणियों में बारबार वर्णन किया है। उदाहरणार्थ कतिपय संत भक्तों के पदों की कुछ इच्छित पंक्तियां देखिए–

1. **रोहिदास** चमार सब कुछ जाने
कठोरे गंगा देख। –एक नाथ
2. जन **रविदास** नीच कुल ऊंचा, ताकूं तीन लोक सब जाणै रे।
जन 'हरीदास' वै निरभं देश्या, तातैं उलटी तांणै रे। –हरीदास
3. अमृत रांम रसायण पीया, ताथैं अमर कबीरा कीया।
रांग रांम कहि रांम समांनां, जन **रविदास** मिले भगवानां।। –दादू
4. निवृत्ति ज्ञानदेव सोपान चांगाजी, मेरे जी के हैं जी नामदेव।
नागाजन मित्र नरहरि सुनार, रविदास कबीर सगे मेरे।। –तुकाराम
5. राम रस पीया रे, पानी ही आनंद होय।
सौंझे सैन पियो **रविदासा,** मीरा प्रेम बड़ाई रे।। –सेवादास
6. कबीर नामदेव पीया **रविदासा,** भवसागर की काटी पासा। –कल्याणदास
7. जन **रविदास** साधि सूरा तन, बिप्रन मार मचाई रे। –छोटे सुंदरदास
8. भेंटो जब **रविदास** कूं, लीन्हों भुजा पसार।
हरि लीला रीझै नहीं, अचरज कहों अपार।। –दयाबाई
9. पीपा धना सैन **रविदासा** सुखदेव पीयो अघाई।
अमर गुरु पीयो हुए निरभं अगम सुरति ठहराई।। –दरसन दास
10. पीपा जन **रविदास** पुनि सुमरे सुखदायी रे।
पीया पियाला प्रेम का उर तपन बुझाई रे। –रूपरासजी

गुरु रविदासजी का जीवन आरंभ से अंत तक संघर्षमय रहा है। वे एक परम संत तो थे साथ ही बहुत कर्मवीर एवं कर्मठ व्यक्ति थे। यही कारण है कि उनके पग सभी

अवस्थाओं में अडिग रहे और आगे ही बढ़ते गए। रविदासजी को समाज का ही कोप-भाजन नहीं होना पड़ा, अपितु उन्हें शासक वर्ग से भी मोर्चा लेना पड़ा। किंतु, सर्वत्र तथा सदा विजय उन्हीं की रही।

शाह सिकंदर लोदी से रविदासजी की भेंट की किंवदंतियां अनेक रूपों में प्रचलित हैं। इस भेंट का समय 1545 वि. माना जाता है जबकि सिकंदर लोदी राज्याभिषेक से पूर्व बनारस आया था। इस समय रविदासजी की आयु 112 वर्ष की थी।

शाह सिकंदर लोदी और गुरु रविदासजी की भेंट के संबंध में प्रचलित एक कथा के अनुसार यह कहा जाता है कि जब शाह बनारस आया तो उसने रविदासजी की ख्याति सुनकर उन्हें दरबार में आमंत्रित किया। उनकी भक्ति, ज्ञान तथा अनेक अलौकिक बातें देख-सुनकर सिकंदर लोदी अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने रविदासजी को सम्मानित किया। एक अन्य किंवदंती है कि कुछ ईर्ष्यालु व्यक्तियों की शिकायत पर शाह ने उन्हें दरबार में बुलाया और मुश्कें बंधवाकर हाथी के पैरों तले कुचलवाने का हुक्म दिया। किंतु मदमस्त हाथी छोड़ा जाने पर रविदासजी के दिव्यतेज से प्रभावित होकर उनके समीप मस्तक झुकाकर खड़ा हो गया। तब शाह ने अपनी भूल मानी और उन्हें क्षमायाचना पूर्वक सत्कार करके विदा किया। लेकिन, ऐसी ही घटना संत कबीर के साथ घटित बताई जाती है। इन घटनाओं से इतना तो सत्य सिद्ध है कि सिकंदर लोदी ने उस समय के हिंदू-संस्कृति के उन्नायक तथा संरक्षक प्रभावशाली व्यक्तियों को अवश्य ही किसी न किसी प्रकार दंडित एवं भयभीत किया होगा। शाह सिकंदर लोदी अपने ऐसे कृत्यों के लिए इतिहास में काफी बदनाम है। यह भी सर्वथा संभव है कि ऐसे ही समय गुरु रविदासजी के हृदय से पराधीनता संबंधी निम्नलिखित उद्‌गार निकले हों–

1. पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत।
   'रविदास' दास पराधीन सों, कौन करे है प्रीत ।।
2. पराधीन को दीन क्या, पराधीन बे दीन।
   'रविदास' दास पराधीन कौ, सब ही समझे हीन ।।

गुरु रविदासजी का निर्वाण 151 वर्ष की आयु में सं. 1584 वि. में चित्तौड़ में हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि ये काशी में ही ब्रह्मलीन हुए किंतु, यह सत्य नहीं।

अंतिम दिनों में मीरा के अनुरोध पर गुरु रविदासजी सपत्नीक चित्तौड़ आकर रहने लगे थे। परंपरा से मीरा रविदासजी की शिष्या मानी जाती है। उसने स्वयं भी अपने पदों में रविदासजी का गुरु रूप में उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ देखिए :-

1. 'मीरां' ने गोबिंद मिल्या जी, गुरु मिल्या **रैदास**।
2. **रैदास** संत मिले मोहिं सतगुरु, दीन्ही सुरत सहदानी।
3. मीरा के प्रभु तेम ही स्वामी, श्री **रैदास** सतगुर जी।
4. मेरो मन लागो गुरु सों, अब न रहुंगी अटकी।
   गुरु मिलिया **रैदास** जी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी ।।

गुरु रविदासजी के चित्तौड़ आने पर वहां रहते हुए प्रतिदिन भजन-कीर्तन के अनंतर प्रवचन करते। उसमें वे अपने समाज-सुधार-संबंधी विचारों का दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन तथा प्रचार करते। किंतु, कुछ कट्टरपंथी लोगों को यह सहन नहीं था। उन्हें एक चमार का व्यासगद्दी पर बैठकर लोगों को धर्मोपदेश देना अखरता। वे धर्मोपदेश देना ब्राह्मण अथवा उच्चकुलोत्पन्न व्यक्ति का ही अधिकार मानते थे। इसलिए वे रविदासजी का निरंतर विरोध करते रहते।

कहते हैं कि रविदासजी एक दिन नित्य की भांति धर्मोपदेश कर रहे थे। संयोगवश उस दिन कट्टर पंथियों के विरोध ने कुछ उग्र रूप धारण कर लिया। वे रविदासजी को यज्ञोपवीत रहित तथा अब्राह्मण कहकर उन्हें धर्मोपदेश का अनधिकारी बताते हुए प्रवचन के मध्य बारंबार टोकते रहे। कहा जाता है कि रविदासजी सहसा व्यासगद्दी से उठ खड़े हुए और उन्होंने अपना वक्ष चीर यज्ञोपवीत दिखाकर अपने ब्राह्मणत्व का परिचय दिया। उस समय दिव्य यज्ञोपवीत की करोड़ों सूर्य जैसी ज्योति चारों ओर चमक उठी। दर्शक लोग चकाचौंध रह गए। उस दिव्यज्योति के विलीन होने के साथ ही गुरु रविदासजी सशरीर ब्रह्मलीन हो गए। केवल उनके चरण-चिन्ह वहां शेष दिखाई दिए। रविदासजी के ब्रह्मलीन होने का समाचार लेकर भक्तजन जब लोना देवी के समीप कुटिया में पहुंचे तो उन्होंने देखा कि वे भी सशरीर अंतर्धान हो चुकी हैं।

मीरा बाई ने अपने गुरु के पवित्र चरण-चिह्नों की चिरस्थायी स्मृति बनाए रखने के लिए उनके ऊपर छतरी बनवा दी। गुरु रविदासजी के स्मारक 'रविदासजी की छतरी' तथा 'रविदासजी के चरण चिह्न' चित्तौड़ में उनके श्रद्धालु-भक्तों के लिए आज भी तीर्थ स्थान बने हुए हैं।

गुरु रविदासजी ने स्वयं अपना कोई पंथ स्थापित किया हो, यह संभव नहीं। कोई भी सिद्ध संत इस गुरुडम तथा पंथवाद का पक्षपाती नहीं होता। निःसंदेह गुरु रविदासजी भी नहीं थे। किंतु उनके मतवाद की परंपरा चलती रही, यह सत्य है। उसमें अनेक संत महात्मा हो चुके हैं। आज भी गुरु रविदासजी के अनुयायी भारत के प्रत्येक भाग में मिलते हैं। इनकी संख्या लाखों में नहीं करोड़ों में है। ये महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, दिल्ली आदि प्रदेशों में बिखरे हुए हैं। गुरु रविदासजी के अनुयायी अपने को रविदासी, रैइदासी, रामदासी, घुसिया, चमार, चर्मकार, रैगर, खटीक, जटिया, जाटव आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। सन् 1891 ई. की जन गणना के अनुसार रविदास जाति अथवा रविदास पंथ के लोग 1157 उपजातियों में विभक्त पाए गए।

रविदासियों की इतनी बड़ी संख्या को देखते हुए यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि गुरु रविदासजी के प्रचारक शिष्यों की एक सुदीर्घ परंपरा तथा उनके प्रचार केंद्र (गद्दियों) की एक बड़ी संख्या रही है। रविदासी संतों, भक्तों एवं श्रद्धालुओं द्वारा अपने

गुरु की पवित्र स्मृति में स्थान-स्थान पर उनके नाम से बनाए छतरी कुंड, बाबली, मंदिर आदि इसके प्रमाण हैं। इन स्मारकों के ध्वंसावशेष अथवा पूर्ण रूप आज भी प्राप्त हैं। इसमें दूसरा प्रमाण है रविदासजी के शिष्यों, अनुयायियों, श्रद्धालुओं द्वारा अपने गुरु को प्रांतीय भेद से विभिन्न नामों से पुकारा जाना। बंगाल में इनका नाम रुईदास, महाराष्ट्र में रोहीदास, अथवा रोहिताश्व, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान में रविदास तथा रैदास और पंजाब में रैदास, रविदास तथा रामदास नाम विशेषतया प्रचलित रहे हैं। गुरु ग्रंथसाहब में (जिसमें इनके 39 पद संग्रहीत हुए हैं) इनका 'रविदास' नाम ही प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः यही मूल नाम है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है रविवार के दिन उत्पन्न होने के कारण इनका 'रविदास' नाम रखा गया था।

3

गुरु रविदास वाणी की विशेषताएं एवं विचारधारा

संत-भक्तों की वाणी दोहों तथा पदों में प्राप्त होती है। गुरु रविदासजी की वाणी भी इन्हीं दो रूपों में उपलब्ध है।

गुरु रविदासजी की वाणी की अपनी अनेक विशेषताएं हैं। उन्हें परवर्ती संतों, भक्तों, विद्वानों तथा आलोचकों ने भी स्वीकार किया है और उनकी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। रविदासजी एक अत्यंत विनीत, राग-द्वेष विहीन खंडन-मंडन प्रवृत्ति रहित उच्च कोटि के संत कवि थे। अतएव उनकी वाणी भी उन्हीं की भांति सरस, सरल एवं सुबोध, किंतु उदात्त विचारों तथा भक्ति भावना से परिपूर्ण है। उसमें कहीं किसी प्रकार की भी कटु भावना एवं उत्तेजना नहीं पाई जाती। संत नाभादासजी ने रविदास-वाणी को 'संदेह ग्रंथि खंडन निपुन, के साथ-साथ 'बिमल बानि' नाम अत्यंत उपयुक्त एवं उचित दिया है। उन्होंने अपने भक्तमाल में रविदासजी के संबंध में जो प्रशस्ति गाई है, वह उनकी वाणीगत विशेषताओं तथा व्यक्तित्व का पूर्ण एवं सत्य-सत्य उद्घाटन करती है–

संदेह ग्रंथि खंडन-निपुन बानि बिमल रविदास की।
संदाचार स्रुति सास्त्र बचन अविरुद्ध उचार्‌यो।
नीर छीर बिबरन परम हंसनि उर धारयो।।
भगवत कृपा परम गति इहिं तनु पाई।
राज सिंहासन बैठि ज्ञाति परतीति दिखाई।
बर्नास्रम अभिमान तजि पद रज बंदहिं जासु की।
संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि बिमल रविदास की।।

—रविदास की वाणी संदेह ग्रंथि (शंकाओं) को सुलझाने में, सदसद् का विवेक कराने में परम सहायक है। वह अत्यंत विमल है, दोषों से रहित है। रविदासजी ने जिस आचार पद्धति का अनुसरण किया और जिन विचारों का प्रचार किया, जो उपदेश दिए वे वेद-शास्त्रों के अनुकूल

थे। वे सब सर्वथा वेद विहित थे। उन विचारों तथा उपदेशों को नीर-क्षीर विवेक वाले, भले-बुरे, पाप-पुण्य के ज्ञान की सामर्थ्य रखने वाले संत महात्मा लोग भी स्वीकार एवं पालन करते थे। रविदास ने भगवत्कृपा से जीवितावस्था में ही परम गति प्राप्त कर ली। वे जीवन मुक्त थे। उन्होंने इस उच्चतम पद को प्राप्त करके अपने कुल की उच्चता का ज्ञान संसार को कराया। बड़े-बड़े संत महात्मा तथा विद्वान अपने वर्ण और आश्रम का अभिमान त्याग कर उनकी चरण वंदना करते थे। रविदास की वाणी शंकाओं को दूर करने वाली है और सब प्रकार के दोषों से मुक्त है।

गुरु रविदास वाणी की भाव एवं शैलीगत विशेषताओं पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने 'हिंदी साहित्य' में लिखते हैं--'अनाडंबर सहज शैली और निरीह आत्मसमर्पण के क्षेत्र में रविदास के साथ कम संतों की तुलना की जा सकती है। यदि हार्दिक भावों की प्रेषणीयता काव्य का उत्तम गुण हो तो निःसंदेह रविदास के भजन इस गुण से समृद्ध हैं। सीधे-सादे पदों में संत कवि के वृहद् भाव बड़ी सफाई से प्रकट हुए हैं और वे अनायास सहृदय को प्रभावित करते हैं। उनका आत्म निवेदन, दैन्य-भाव और सहज भक्ति इसी तरह के भाव पाठक के हृदय में संचारित करते हैं। इसी को काव्य में प्रेषणीयता का गुण कहते हैं।'

इस प्रकार गुरु रविदासजी की वाणी अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण है।

जैसा कि प्रारंभ में लिखा जा चुका है कि गुरु रविदास जी की वाणी अन्य संत भक्तों की भांति दोहों और पदों में उपलब्ध है। दोहों को साखी कहा जाता है। यह इसलिए कि ये साखियां संतभक्तों के उपदेशों के, उनकी शिक्षाओं के प्रत्यक्ष रूप हैं, उनके अनुभवों के सार वचन हैं। इसी कारण संत कबीर ने साखियों को 'ज्ञान की आंख' कहकर इनके बिना संसार के झंझटों से मुक्ति पाना असंभव माना है :-

साखी आंखी ज्ञान की समुझि लेहू मन मांहि।
बिन साखी संसार का झगरा छूटत नांहि।।

इसी प्रकार 'पद' भी संत-भक्तों के द्वारा जन भाषा में राग-रागनियों के माध्यम से प्रकट किए गए उनके हृदय-तल से निकले हुए भक्ति रस के सरस अनुभव उद्‌गार हैं।

गुरु रविदासजी की वाणी में हमें उनके व्यक्तित्व एवं भक्ति साधना के साथ-साथ उनकी विचारधारा के व्यापक दर्शन होते हैं। उनके दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक विचारों की एक सुस्पष्ट एवं सर्वांगीण झांकी हमें उनकी साखियों और पदों में मिल जाती है।

रविदासजी ने सर्वोच्च सत्ता को वेदांतियों की भाषा में 'ब्रह्म' ही कहा है और उसे 'पूरन ब्रह्म बसे सब ठाईं' बताकर पूर्ण एवं सर्वव्यापक स्वीकार किया है 'चरन पताल सीस असमाना' द्वारा ब्रह्म का विराट् रूप प्रकट करते हुए वे उसके विषय में स्पष्ट कहते हैं--

आदि मध्य औसान एक रस, एक तार है भाई ।
थावर जंगम कीट पतंगा, पूरि रहै हरि राई ।।
सर्वेस्वर सर्वंगी सरबगति, करता हरता सोई ।
द्रिस्टि अद्रिस्टि गेय अरु ग्याता, एकमेक है 'रविदासा' ।।

वह अनिर्वचनीय है :-

1. जस हरि कहीये तस हरि नांही,
   है अस जस कछू तैसा ।
2. कहै 'रविदास' अकथ कथा, उपनिषद् सुनीजै ।
   जस तूं तस तूं ही, कस औपम दीजै ।।

रविदासजी उस अनिर्वचनीय ब्रह्म का उपनिषदों की भांति विशेषणों द्वारा वर्णन करते हैं–

निसचल निराकार अज अनूपम, निरभै गति गोबिंदा ।
अगम अगोचर अछर अतरक, निरगुन अंत अनंदा ।।

गुरु रविदासजी दर्शन की भाषा में अद्वैतवादी हैं। वे ब्रह्म तथा जीवात्मा में कोई भेद नहीं मानते। उनके मतानुसार :-

कनक कुटक सुत पट जुदा, रजु भुअंग भ्रम जैसा ।
जल तरंग पाहन प्रतिमा ज्यों, ब्रह्म जीव दुति ऐसा ।।

और इस द्वैतभाव का कारण 'माया' है, जिसे उन्होंने 'केसवे विकट माया तोर' कहकर बड़ी विकट बताया है। उसकी प्रबलता के विषय में रविदासजी का कथन है–

बरजि हो बरजि बीठले, माया जग खाया ।
महा प्रबल सब ही सन, ये सुर नर मुनि भरमाया ।।
जोगी जती तपी संन्यासी, पंडित रहन न पावै ।।

इस विकट तथा अति प्रबल माया से छुटकारा पाने का उन्होंने सहज उपाय भी बताया है और वह उपाय है 'राम नाम' का जाप–

कहै 'रविदास' राम जपि रसना, माया कैसे संग रहै रे ।

रविदासजी ने 'जो दीसे सो होई बिनासा' बताते हुए 'दुनिया फनखाने' कहा है। उन्होंने संसार को बाजी (प्रभु की लीला) माना है–

कहि 'रविदास' बाजी जगु भाई ।

और इसे दुःखों का घर कहा है :-

जित देखूं तित दुख की रासी ।

किंतु वे संसार को निःसंदेह कर्म-क्षेत्र के रूप में स्वीकार करते हैं जब 'मानुखा अवतार दुलभ' तथा 'दुलभ जनमु पुंन फल पाइयों बिरथरा जात अबिबेके' कहकर मनुष्य को उद्‌बोधन एवं प्रेरित करते हुए उसे आश्वासन देते हैं कि–

अबकी बेर सुकिरत करीजा,
बहुरि न यह गढ़ पाय वे ।

गुरु रविदासजी जन्मजात भक्त होते हुए भी एक महान क्रांतिकारी समाज सुधारक थे । अतिकोमल हृदय के होने के कारण जन-जन की पीड़ा देखकर वे सहज ही द्रवित हो जाया करते थे । 'राम नाम' को सब दुःखों की निवृत्ति की एक मात्र औषध मानकर वे उसी को अपनी करनी एवं कथनी द्वारा व्यक्त करते थे और दूसरों को भी इसकी प्रेरणा देते थे । इसी कारण उनकी वाणी में उनके धार्मिक तथा सामाजिक विचारों की व्याख्या स्वतः हो गई है ।

धर्म के क्षेत्र में बाह्याचार को गुरु रविदासजी ने बिना भक्ति भावना के व्यर्थ बताया है । उनका स्पष्ट कथन है कि 'राम नाम बिन जे कछु करिए, सो सब भरम कहाई ।'

रामनाम न लेकर विषय भोगों में पड़े हुए साधु वेष धारण करने वालों को बुरा समझते हैं । ऐसे व्यक्तियों को वे मीठी फटकार देते हैं–

भेख लियो पै भेद न जान्यो, इमृत लेइ बिषै सौं सान्यो ।
काम क्रोध मैं जनम गंवायो, साध संगति मिलि राम न गायो ।।

राम और धर्म (सत्य) का अटूट संबंध मानते हुए उनका कथन है–

कायम दायम राम इक, दोयम सत्त इमान ।
'रविदास' राम अरु सत्त बिन, बिरथा सभ कछु जान ।।

इस वचन द्वारा रविदासजी का यह विचार स्पष्टतया प्रकट हुआ है कि यदि मनुष्य के अंदर प्रभु के प्रति प्रेम और धर्म में निष्ठा नहीं है तो उसकी सब सांसारिक उपलब्धियां व्यर्थ हैं ।

गुरु रविदासजी ने कहा है–

'धरम करम दुई एक है ।'

उन्होंने धर्म का प्रायः कर्म, सत्कर्म, स्वकर्म तथा सदाचरण अर्थ माना है । 'राम' और 'सत्कर्म' पर भरोसा करने पर ही उन्होंने जीवन की सफलता बताई है । कर्म की वे एक अनिवार्य शर्त भी लगाते हैं और वह है–'निष्काम कर्म भावना'। उपनिषद् एवं गीता की भांति वे मनुष्य को अपनी सौ वर्ष की पूर्ण आयु भर धर्म के निमित्त ही निष्काम भाव से कर्म करने का उपदेश देते हैं । ऐसा उपदेश वे क्यों देते हैं ? इसका कारण उनका यह दृढ़ विश्वास है, कि–

'रविदास' निहकरमी करम ही, मेल कराए राम ।

रविदासजी के अनुसार स्वकर्म ही धर्म है, सही धर्म है, यही भक्ति है। यही कारण है कि वे स्वकर्म (अपने जूते बनाने के कार्य) और सुकर्म-धर्म द्वारा भवसागर से पार होने की अपनी भावना प्रकट करते हैं—

'रविदास' हों निज हत्थहिं, राखों रांबी आर ।
सुकिरित ही मम धरम है, तारैगा भव पार ।।

परम भागवत रविदासजी अतिशय मानवतावादी थे। वे मानव को मानव के नाते महत्व देते थे, धन, मान, मर्यादा, जाति कुल आदि के कारण नहीं। जातिवाद के वे घोर विरोधी थे। अपने युग की जाति-पांति के रोग की उग्रता को देखकर उन्होंने क्षुब्ध होकर कहा था—

जात पांत के फेर मंहि, उरझि रह्यो सभ लोग ।
मानुषता कूं खात हई,'रविदास' जात कर रोग ।।

और वस्तुस्थिति का सही-सही चित्रण करते हुए अपना स्पष्ट विचार प्रकट किया कि :-

जात जात में जात है, ज्यों केलन में पात ।
'रविदास' न मानुष जुड़ सकैं, जो लौं जात न जात ।।

इसीलिए उन्होंने—

'रविदास' पूत सभ प्रभ के, कोउ नहिं जात कुजात ।

बताते हुए और वैदिक विचारधारा के अनुसार 'करनी जात परधान' पर बल देते हुए कहा कि—

'रविदास' जन्म कै कारनै, होत न काउ नीच ।
नर कूं नीच करि डारि है, ओछे करम कौ कीच ।।

अपनी उपर्युक्त धारणा के कारण ही रविदासजी ने मनुष्य के सदाचारी जीवन व्यतीत करने पर अत्यधिक बल दिया है। उनका मत है—

सत्त संतोष अरु सदाचार, जीवन को आधार ।
'रविदास' भये नर देवते, जिन तिआगे पंच बिकार ।।

देवत्व प्राप्ति मनुष्य जीवन का मुख्य एवं अंतिम लक्ष्य है और रविदासजी के अनुसार इंद्रियों का संयम अर्थात विषय भागों की तरफ न भागना इसकी पहली व आखिरी

शर्त है, क्योंकि जितेंद्रिय व्यक्ति ही परम-पद (देवत्व) का अधिकारी होता है–

जो बस राखे इंद्रियां, सुख दुख समझि समान ।
सोउ अमरित पद पाइगो, कहि 'रविदास' बखान ।

यदि मनुष्य के जीवन में सुख की कामना है तो उसे अपने मन को कपट रहित रखना चाहिए। उसे चाहिए कि वह न कुमार्ग का अनुसरण करे और न दुष्ट तथा कुमार्गी लोगों की संगत में रहे। इसके विपरीत उसे–

जो जन संत सुमारगी, तिन पांय लागो 'रविदास' ।

गुरु रविदासजी स्वाधीनता के पक्षपाती हैं। इसीलिए उन्होंने पराधीनता को पाप एवं अभिशाप कहा है। उनका कथन है कि 'पराधीन व्यक्ति एक दास का जीवन व्यतीत करता है। उससे कोई प्रेम नहीं करता, अपितु उसका सब तिरस्कार करते हैं। उसे हीन भावना से देखा जाता है इसलिए इस दीन-हीन एवं पतित जीवन से बचने के लिए मनुष्य को स्वाधीन स्वतंत्र रहने का प्रयत्न करना चाहिए।' यह दासता विदेशी राज की भी हो सकती है और इंद्रियों के विषय-भोगों की भी। रविदासजी निःसंदेह दोनों ही प्रकार की दासता से मुक्त होने का संदेश देते हैं। उनकी 'स्वराज्य' की कल्पना भी महान है। वे 'रामराज्य' की ही कामना करते हैं जब कहते हैं–

ऐसा चाहों, राज में, जहां मिलै सबन कौ अन्न ।
छोट बड़ो सभ सम बसै, 'रविदास' रहैं प्रसन्न ।।

इसी सुंदर स्वराज्य की कल्पना करते हुए उन्होंने अपने निवास स्थान को 'बेगम पुरा' नाम से याद किया है और कहा है–

बेगमपुरा सहर का नाऊं,
दुख अंदोह नहीं तिहिं ठाऊं ।।

संक्षेप में, गुरु रविदासजी प्रभु परायण, परम धार्मिक जाति-पांति के कट्टर विरोधी, मानव समानता के प्रबल समर्थक, विषय भोगादि का तिरस्कार करने वाले, सर्वहितकारी, स्वाधीनता के पुजारी, स्वतंत्र चिंतक एवं उदार-उदात्त विचारों के स्वामी तथा प्रचारक महापुरुष हैं। उनके मत में मनुष्य-जीवन का अंतिम लक्ष्य प्रभु प्राप्ति है, मानव सेवा तप है, यही प्रभु भक्ति है और स्वकर्म प्रभु प्राप्ति का सहज साधन है।

4

गुरु रविदासजी की भक्ति भावना तथा भक्ति साधना

गुरु रविदासजी मूलतः एवं जन्मतः भक्त हैं। दुर्लभ मानव जन्म की सफलता वे भक्ति में मानते हैं। इससे जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति मिलती है। इसीलिए तो उन्होंने–

तुमरे भजन करहिं जम फांसा, भगति हेत गावै 'रविदासा'।

तथा

चारि वेद जाके सुमृति स्वांसा, भगति हेत गावै 'रविदासा'।

जैसे वचनों द्वारा भक्ति के लिए अपनी निष्ठा और प्रभु के गुणगान करने की बात की है। उनके अनुसार जिस प्रकार दुर्लभ मानव जन्म पुण्य कर्मो के फलस्वरूप प्राप्त होता है –

दुलभ जनमु पुंन फल पाइओ।

उसी प्रकार भक्ति भी बड़े भाग्यवान को ही मिलती है :–

कहै रविदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।

किंतु भक्ति करना भी हंसी-खेल नहीं। लोग अन्न-जल के दान करने, ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें करने, घर छोड़कर किसी जंगल में पर्वत की गुफा में जा बैठने आदि को भक्ति कहते हैं, यह 'भक्ति नहीं है। यह तो भक्ति का भ्रम मात्र है। वास्तविक भक्ति तो प्रभु में सच्ची लगन है –

राम नाम बिन जे कुछ करिए,
सो सब भरम कहाई।
भगति न रस दान भगति न कथै ग्यान,
भगति न बन में गुफा खुदाई।
भगति न ऐसी हांसी।

कुछ लोग भक्ति के लिए साधु संतों का वेशधारण कर लेते हैं, किंतु उनके अंदर प्रभु के

प्रति किंचित मात्र भी लगाव नहीं होता। ऐसे लोगों के विषय में रविदासजी कहते हैं–

माथै तिलक हाथ जप माला, जग ठगने कू स्वाग बनाया।
मारग छांड़ि कुमारग डहकैं, सांची प्रीत बिनु राम न पाया।।

उन्होंने ऐसे पाखंडी लोगों की व्यभिचारिणी स्त्री से उपमा दी है जो मुख से तो अपने पतिव्रता होने का दावा करती है, लेकिन हृदय से किसी और की होती है–

कहा भयउ बहु पाखंड कीये, हरि हिरदै सुपिनै न आंन।
ज्यों दारा बिभचारिणी, मुखि पतिब्रता जीअ आंन।।

भक्ति के लिए गुरु रविदासजी एक बड़ी शर्त लगाते हैं और वह है 'अहं' का त्याग। अहंभाव का त्याग करने पर ही मनुष्य भक्ति प्राप्त कर सकता है–

आपौ गयौ तब भगति पाई, ऐसी भगति है माई।

उनका तो यहां तक कहना है कि 'भक्ति' के आने पर अभिमान (अहंकार) की भावना स्वतः जाती रहती है। अहंभाव रहित सच्ची भक्ति को रविदासजी ने एक उदाहरण द्वारा बड़े ही सुंदर ढंग से स्पष्ट किया है–

तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपलक ह्वै चुणि खावै।

–जैसे धूल में पड़े शक्कर के कणों को एक छोटी चींटी तो चुनकर खा सकती है, लेकिन बड़े आकार का हाथी चुनकर नहीं खा सकता। उसी प्रकार आपा अर्थात अहंभाव रहित अकिंचन व्यक्ति तो जगत के कण-कण में व्याप्त परमानंद को प्राप्त कर सकता है, किंतु एक अभिमानी पुरुष नहीं कर सकता।

इसी कारण उन्होंने भक्ति पथ को उपनिषद् के वचन के अनुरूप ही खांडे की धार जैसा पैना और पतला कहा है–

आगे पंथ खरा है झीना, खांडे धार जिसा है पैना।

प्रभु प्रेम का प्याला मांगने वाले अवधूत को इसके बदले अपना सिर तक देना पड़ता है–

देहु कलाली एक पिआला, ऐसा अवधू हो मतबाला।
कहै कलाली पिआला देऊं, पीवण हारै का सिर लेऊं।।

संत कबीर ने भी तो ऐसा ही विचार प्रकट किया था–

राम रसायण प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
'कबीर' पीवण दुलभ है, मांगे सीस कलाल।।

भक्ति अथवा प्रभु प्रेम को कठिन तथा दुर्लभ कहा गया है। यह इसी कारण कि मनुष्य का माया से दूर रह सकना अत्यंत कठिन है। सांसारिक सुखों तथा प्रलोभनों के प्रबल आकर्षण से अपने को बचाए रखना उसके लिए बड़े जीवट का काम है, क्योंकि 'माया सब जग खाया'। अविद्या से 'विवेक दीप मलिन' हो जाता है। परिणामस्वरूप मनुष्य काम, क्रोधादि पांच विकारों में फंसकर दुख पाता है–

काम भ्रम क्रोध भ्रम लोभ-भ्रम मोह-भ्रम ।
पंच संग्या मिलि पीडयां प्राणियां ।

किंतु जिन्होंने इन विकारों पर काबू पा लिया है, उनके लिए भक्ति बड़ी ही सरल तथा सहज है । रविदासजी का कथन है कि प्रभु भक्त को ये विकार संताप नहीं पहुंचा सकते–

मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ, भगत नहीं संतापा ।

क्योंकि,

संपति विपति पटल माया धन, तामहिं मगन न होत तेरौ जन ।

इस प्रकार इनके अनुसार विकारों के वश में न होनेवाला व्यक्ति प्रभु भक्ति की ओर स्वतः अग्रसर होता है और प्रभु-भक्त को ये विकार किसी प्रकार पीड़ित तथा दुःखी नहीं कर सकते । इसी कारण रविदासजी भक्ति के लिए घर-बार छोड़कर संन्यासी बनने की भी आवश्यकता नहीं समझते । उनका दृढ़ विश्वास है कि–

1. नेक कमाई जउ करहि, ग्रह तजि वन नहिं जाय ।
   'रविदास' हमारो राम राय, ग्रह महिं मिलिहिं आय ।।
2. जिह्वा से ओंकार जप, हत्थन सों कर कार ।
   राम मिलहिं घर आई कर, कहि 'रविदास' विचार ।।

संक्षेप में, रविदासजी के मत में मनुष्य द्वारा हरि-नाम स्मरण करते हुए निष्काम भाव से स्वकर्म एवं सत्कर्म का किया जाना ही 'भक्ति' है ।

गुरु रविदासजी ने भक्ति के साधन रूप में श्रद्धा, सत्संग और नाम-जप पर अत्यधिक बल दिया है । उनका स्पष्ट कथन है कि सत्संग के बिना श्रद्धा-भाव उत्पन्न नहीं होता और श्रद्धा के अभाव में प्रभु-भक्ति नितांत असंभव है–

साध संगति बिना भाऊ नहीं ऊपजै,
भाउ बिनु भगति नहीं होइ तेरी ।

प्रभु की अनन्य भक्ति का आधार 'नाम' का जप है । संत नामदेव ने कहा था–

तत गहन को नाम है, भज लीजै सोई ।

रविदासजी ने भी नाम की महिमा स्वीकार करते हुए कलियुग में एक मात्र इसी को मुक्ति तथा सुखी जीवन का आधार माना है–

सति जुगि सति तेता जगी, दुआपरि पूजाचार ।
तीनों जुग तीनों दिड़े, कलि केवल नाम अधार ।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी इसी के अनुरूप विचार प्रकट किया है—

कलिजुग केवल नाम अधारा ।
सुमरि सुमरि नर उतरई पारा ।।

इस नाम को रविदासजी ने 'राम' की संज्ञा दी है और कहा है—

नाना खिआन पुरान वेद बिधि चउतीस अछर मांही ।
बिआस बीचारि कहिओ परमारथु राम नाम सरि नांहि ।।

किंतु, रविदास के 'राम' दशरथ के पुत्र नहीं हैं । वह तो—

सब घट मंहि रमि रह्यो, 'रविदास' हमारो राम ।
सोई बूझई राम कूं, जो होई राम गुलाम ।।

रविदासजी इसी 'राम नाम धन' के व्यापारी थे । वे कहते हैं—

हौं बनजारो राम कौ ।
मैं राम नाम धनु लादिआ विषु लादी संसारि ।।

राम-नाम धन का व्यापार वे इसीलिए करते हैं, कि—

जन 'रविदास' राम रंगिराता ।
इउं गुरु परसादि नरक नहिं जाता ।।

और —

जौ तुम राम-नाम रंगराते, और रंग न सुहैहौ ।

इस प्रकार जो निरंतर नाम स्मरण करते हुए राम-रंग में रंग जायेंगे वे जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जायेंगे—

कहि 'रविदास' जो जपु नामु ।
तिसु जाति न जनमु न जोनि कामु ।।

प्रभु नाम स्मरण का उपर्युक्त महाफल बार-बार बताते हुए रविदासजी का मनुष्य मात्र के लिए उपदेश है कि—

'रविदास' रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद ।
अह निसि हरि जी सुमिरिये, छांड़ि सकल प्रतिवाद ।

गुरु रविदासजी किसी भी मतवाद से दूर रहकर स्वयं ऐसे ही अहर्निश नाम प्रेम-रस में डूबे रहने वाले संत थे । उन्होंने इसे 'महारस' की संज्ञा दी है और कहा है कि उस मदिरा के पीने से क्या लाभ जिसका नशा थोड़ी देर बाद उतर जाता है । मनुष्य को 'नाम-महारस' का पान करना चाहिए जिसकी मस्ती एक बार चढ़कर कभी उतरती ही नहीं—

'रविदास' मदुरा का पीजिये, जो चढ़ै चढ़ै उतराय ।
नांव महारस पीजिये, जो चढ़ै नांहि उतराय ।।

संत कबीर ने भी ऐसा ही कहा था—

हरि रस पीया जाणिये, जे कबहुं न जाइ खुमार ।
मैंमता घूमत रहै, नाहीं तन की सार ।।

रविदासजी की भक्ति प्रेम-भक्ति है—

प्रेम-भगति नहिं ऊपजै, तातै 'रविदास' उदास ।

वचन द्वारा वे प्रेमा भक्ति के लिए अपनी आकुलता प्रकट करते हैं। वस्तुतः उन्होंने अपने पदों का गायन एक मात्र प्रेमा भक्ति के निमित्त किया है। उनका स्पष्ट कहना है—

इसी कारण वे कामना करते हैं, कि—

मेरी प्रीति गोबिंद सिउं जिनि घटै ।
मैं तउ मोलि महंगी लई जीअ सटै ।।

नारद भक्ति सूत्र में परमात्मा में अतिशय अनुराग को 'भक्ति' कहा है। गुरु रविदासजी प्रभु-प्रेम में पूर्णतया अनुरक्त थे। अपने इस अनुराग को चातक की स्वाति बूंद की चाह का उदाहरण देते हुए वे अपने अनुराग की बात कहते हैं—

ज्यूं तुम्ह कारनि केसवे, अंतरि त्यौं लागी ।
एक अनूपम अनभवै, किमि होई बिभागी ।।
एक अभिमानी चात्रिगा, बिचरत जगु मांही ।
जदपि जल पूरण मही, कहूं वा रुचि नांही ।।

एक अन्य पद में वे प्रभु में अपनी आसक्ति को विरहिणी कांता के माध्यम से प्रकट करते हैं—

अमरित रस कई इक बूंद कूं, तलफत हौं दिन रैन ।
'रविदास' अमीरस बिन पियै, जियरा न पावै चैन ।।

भक्ति की दो अवस्थाएं मानी गई हैं—गौणी भक्ति तथा परा-भक्ति। इनमें गौणी भक्ति साधनावस्था की भक्ति है और पराभक्ति सिद्धावस्था की सूचक। सिद्धावस्था उच्चकोटि की भक्ति है। रविदासजी गौणी भक्ति की साधनावस्था को पार करके पराभक्ति की सिद्धावस्था में पहुंचे हुए संत थे। उनकी वाणी में उनकी इस सिद्धावस्था के भाव अनेक रूपों में प्रकट हुए हैं। नारद भक्ति सूत्र (सूत्र 55) के अनुसार—

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदैव शृणोति, तदैव
भाष्यति, तदैव चिंतयति ।

-पराभक्ति की भूमिका में पहुंचा हुआ भक्त प्रभु-प्रेम में निमग्न हो उसी को देखता है, उसी को सुनता है, उसी को कहता है और उसी को स्मरण करता है। रविदासजी के निम्नलिखित वचन स्पष्टतया उनकी सिद्धावस्था को ही प्रकट करते हैं—

चितु सिमरन करउं नैन अवलोकनो,
स्त्रवन बानि सुजसु पूरि राखउं ।

मन सुमधकरु करउं चरन हिरदै धरउं,
रसन अमृत राम नाम भाखउं ।।

अपने अनेक पदों में तो वे प्रभु का गुण-गान करते हुए 'परम पद' प्राप्त करने की बात साफ-साफ ही कह देते हैं–

सांई सहजि मिल्यो सोई सनमुख, कहै 'रविदास' बडाई ।
जिहि पद सुर नर प्रेम पिआसा, सो पद रमि रह्यो जन 'रविदासा' ।।

इसी प्रकार अपनी दो साखियों में रविदासजी प्रेम पालकी में बैठकर प्रभु-मिलन के अनिर्वचनीय आनंद को प्राप्त करने तथा ब्रह्मबूंद प्राप्त करके अपने खलास (जीवनमुक्त) होने का उल्लेख करते हैं—

1. प्रेम-पंथ की पालकी, 'रविदास' बैठियो आय ।
   सांचे सामी मिलन कूं, आनंद कह्यो न जाये ।।
2. इक बूंद सौ बुझि गई, जनम जनम की प्यास ।
   जनम मरन बंधन टूटई, 'भये रविदास' खलास ।।

प्रेमा भक्ति की सार्थकता तभी समझी जाती है जब भक्त को भगवान से प्रेम करने का व्यसन हो जाता है। 'जन रविदास राम रंगिराता' के अनुसार रविदासजी राम-रंग में पूर्णतया रंग गए थे। तभी उनका कहना है कि 'अब कैसे छूटे नाम रट लागी' इस नाम-रस की मस्ती में डूबे वे सर्वत्र प्रभु के साक्षात दर्शन करते हैं–

'रविदास' पिअ बिनु जगत महं, सूनी सेज न कोई ।
जित देखूं तित पिअ कर, प्रगट मोजरा होइ ।।

क्योंकि 'पूरन ब्रह्म बसै सब ठांई, इसलिए—

कहै 'रविदास' मैं ताही कूं पूजूं,
जाकै ठांव नांव नहिं कोई ।

ऐसी अवस्था में पहुंचकर भक्त को किसी प्रकार के विशेष विधि-विधान अथवा पूजा-सामग्री की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। इसी कारण रविदास जी अपना तन-मन अर्पण करके प्रभु की पूजा करने की बात कहते हैं–

माई ! गोविंद पूजा कहा लै चरावउं ।
फल अरु फूलु अनूप न पावउं ।।
तनु मनु अर पउं पूज चरावउं ।।
गुरपरसादि निरंजन पावउं ।।

यही सहज भक्ति है। इसी को अजपा-जाप की संज्ञा दी गई है। गुरु रविदासजी इसी अजपा-जाप वाली सहज भक्ति करने वाले सिद्ध भक्त हैं।

इतना ही नहीं, गुरु रविदासजी अपने उत्कट एवं एकनिष्ठ प्रेम द्वारा प्रभु के नितांत अंतरंग बन जाते हैं और उनसे एक सखा की भांति हंसी-मजाक भी करने लगते हैं। प्रभु का एक विख्यात नाम 'पतित-पानव' भी है। इसी नाम को लेकर वे कहते हैं — प्रभु पतित-पावन

तुम्हारा विरुद है। यही सत्य है। लेकिन, इसमें तुम्हारी कौन-सी विशेषता है। यह नाम देने दिलाने का कारण तो हम ही हैं। अनंत शक्ति वाले भगवन यदि हम पाप ही न करते तो तुम किसे दूर करते ? हमने पहाड़ जैसे बड़े-बड़े पाप किए और तुम्हें उन्हें दूर करने का अवसर मिला। परिणामस्वरूप तुम्हें 'पतित-पावन' विरुद मिल गया। अब बोलो, इसमें कारण हम हैं कि तुम ? इसमें विशेषता हमारी हुई या तुम्हारी ?

1. जउ पै हम न पाप करंता अह अनंता,
   पतित पावन नामु कैसे हुंता।
2. जो हम पाप करत नहीं मूधर, तौ तू कहा नसावै।

रविदास की प्रेम की जेबड़ी (रस्सी) बड़ी मजबूत है। प्रभु ने उन्हें संसार में जन्म देकर सांसरिक मोह-जाल में फंसा रखा है, तो उन्होंने भी प्रभु को अपनी दृढ़ प्रेम-रज्जू से बांध लिया है। रविदासजी का कहना है—'महाराज, हम तो तुम्हारी आराधना करके इस मोहपाश से मुक्ति पा लेंगे, लेकिन तुम हमारे प्रेमपाश से छूटने का कोई उपाय करो—

जउ हम बांधे मोह फांस, हम प्रेम बंधनि तुम बांधे।
अपने छूटन को जतन करहु, हम छूटे तुम आराधे॥

प्रभु के लिए उनके प्रेम-पाश से छूटना कठिन हो गया। अपने प्रभु की इस विवशता पर रविदासजी मीठी चुटकी लेते हैं—

प्रेम की जेवरी बांधियो तेरो जन।
कहि 'रविदास' छूटिओ कवन गुन॥

अंत में वे स्पष्ट ही कह देते हैं—प्रभु तुम मेरे मन को भा गये हो। अब भागकर इधर-उधर कहां जा पाओगे ? स्वामी, हम तो अब तुम्हारे में ही एकाकार होकर रहेंगे—

कहै 'रविदास' उदास भयौ मन, भाजि कहां अब जईऐ।
इत उत तुम गोबिंद गुसाईं, तुम्हही मांहि समई ऐ॥

भक्त सूरदास ने भी विशेष परिस्थिति में पड़कर एक बार अपने 'कन्हैया' से ऐसा ही कहा था—

हाथ छुड़ाए जात हो, निबल जानि के मोहिं।
हृदय तैं जौ निकरि हो, सबल जानि हौं तोहिं॥

5

गुरु रविदासजी की समाज को देन

मध्यकालीन विकट एवं घोर अंधकारपूर्ण परिस्थितियों में तत्कालीन महामानव स्वामी रामानंद के मार्ग का अनुसरण करते हुए जिन संत भंक्तों ने भारतीय समाज को, उसमें भी विशेषतया निराश एवं दलित प्रपीड़ित वर्ग को नवजीवन और आशा व्यावहारिक संदेश दिया उनमें गुरु रविदासजी अग्रणी हैं। उनका पवित्र जीवन और महान संदेश उनके निर्वाण के लगभग 600 वर्ष बीत जाने पर आज भी समाज को उसी प्रकार नवीन शक्ति एवं प्रेरणा देनेवाले हैं। उनकी वाणी आज के दिशाहीन मानव को उचित दिशा बताने की पूरी-पूरी सामर्थ्य रखती है।

समाज को गुरु रविदासजी की सर्वप्रमुख देन 'मानव समानता' का विचार है। उन्होंने मानव-मानव में ऊंच-नीच, जाति-विजाति आदि भेद-भाव तथा विद्वेष भावना देख उन्हें मानव एकता का संदेश दिया था। उनके इस संदेश का दृढ़ आधार है मनुष्य-मात्र का परब्रह्म द्वारा एक ही प्रकार से और एक से तत्वों से उत्पन्न होना। मनुष्य ही नहीं प्राणिमात्र के विषय में उनका कथन है कि जिस प्रकार एक कुम्हार एक ही मिट्टी से अनेक बर्तन तैयार करता है, इसी प्रकार संसार के सब प्राणी एक ही मिट्टी से बने हैं और इनका बनाने वाला ईश्वर ही है। वही परमात्मा सभी में व्याप्त है। इसीलिए मानव-मात्र के संबंध में रविदासजी का मत है कि—

> इक जोति तै जउ सभ उपजै, तउ ऊंच नीच कस मान।

और–

> 'रविदास' एकै ब्रह्म का, होइं रह्यो सगल पसार।
> एकै माटी सब घट स्त्रजै, एकै सभ कूं सरजन हार।।

इस कारण सब समान हैं। उनमें किसी भी प्रकार का भेदभाव करना महामूर्खता है।

रविदासजी की दूसरी उल्लेखनीय देन है—सदाचारी जीवन एवं नैतिकता का संदेश। सदाचारी जीवन के लिए उन्होंने इंद्रिय-निग्रह पर बल देकर भोगवाद का निराकरण किया

है। इंद्रिय सुखोपभोग की कामना और उसकी तृप्ति के लिए साधन जुटाना भोगवाद का मूल मंत्र है। यह भोगवाद संघर्ष, अशांति और दुख का जनक है। इसलिए गुरु रविदासजी का उपदेश है कि मनुष्य को अपनी इच्छाओं को भोगों से दूर रखना चाहिए।

अपनी इंद्रियों को विषयों में नहीं फंसने देना चाहिए। ऐसा करने से मन में शांति रहती है और हृदय उल्लसित रहता है—

'रविदास' इच्छाएं आपुनी, भागन सेति रख दूर।
मन बुद्धि रहंहि सांत नित, घट मंहि रहिवै नूर।।

इंद्रियों के संयम से आत्मिक शांति के साथ-साथ मनुष्य का आत्मविश्वास भी बढ़ता है—

कुरमे भांति जउ रहहिं, मन इंदिरियां 'रविदास'।
सांत रहइ नित आतमा, बढ़हि आतम बिसास।।

भोगों से दूर रहने पर रविदासजी क्यों अत्यधिक बल देते हैं ? यह इसलिए कि भोगों से मनुष्य को कभी तृप्ति नहीं होती। इसके विपरीत इंद्रियों की तृप्ति से भोगेच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और मनुष्य उनकी प्राप्ति के लिए संघर्ष करता हुआ अपना बुद्धि-विवेक ही खो बैठता है, जो अंत में उसके विनाश का कारण बनता है। गीता (2,62-63) का वचन है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधाभिजायते।।
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिनाशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

विषयों का ध्यान करने से मनुष्य विषयों में लगाव रखने लगता है। लगाव से भोग की इच्छा होती है। भोगेच्छा में बांधा पड़ने पर क्रोध आता है। क्रोध से विवेक जाता रहता है। विवेकहीन होने से मनुष्य भ्रांत हो जाता है। भ्रांति से बुद्धि (ज्ञान शक्ति) जाती रहती है और बुद्धि के नाश से मनुष्य लक्ष्यहीन होकर नष्ट हो जाता है। इसलिए रविदासजी का संदेश है कि—

बुद्धि अरु विवेकहिं, जउ राखन चाहौ पास।
इंदिरियां संग निरत कौ, तजि देहु 'रविदास'।।

भोगवाद की अनेक दुष्प्रवृत्तियों में से एक दुष्प्रवृत्ति है—धन-लिप्सा। गुरु रविदासजी धन संचय को दुख का कारण मानते हैं। उनका कहना है कि धन के त्याग में, उसे परोपकार तथा जनसेवा में व्यय करने में ही सुख है। इसलिए धन संग्रह नहीं करना चाहिए—

धन संचय दुख देत है, धन त्यागे सुख होय।
'रविदास' सीख गुरु देव की, धन मति जोरै कोय।।

संतोष में ही परम सुख मानते हुए रविदासजी का उपदेश है–

जो कोउ लोरै परम सुख, तउ राखै मन संतोष ।
'रविदास' जहां संतोष है, तहां न लागै दोष ।।

आदर्श जीवन के लिए उनकी कसौटी है–

सत संतोष अरु सदाचार, जीवन को आधार ।
'रविदास' भये नर देवते, जिन तिआगे पंच बिकार ।।

रविदासजी सत्य, संतोष और सदाचार तथा नैतिक मूल्यों के अतिरिक्त वचन-पालन पर भी बल देते हैं । उनका संदेश है कि सिर देकर भी दिए गए वचन का पालन करना चाहिए । वचन हारने वाले का तो जीवन में गर्व करने को कुछ भी बाकी नहीं रह जाता–

1. बचन गयो नहीं आवत्त है, सीस कटा फिर आय ।
 'रविदास' बचन कूं राखिए, सिर जाइहि तउ जाय ।।
2. 'रविदास' बचन जो दे दियो, उह न जानै पाय ।
 बचन हरै कउ जगत मंहि, कछु न सेस रहाय ।।

गुरु रविदासजी की अन्य विशिष्ट देन है–श्रम साधन की प्रतिष्ठा । उन्हें परोपजीवी जीवन से घृणा है–

'रविदास' स्रम कर खाइहि, जो लौं पार बसाय ।
नेक कमाई जउ करइ, कबहुं न निहफल जाय ।।

रविदासजी की दृष्टि में 'श्रम' ईश्वर का रूप है । श्रम ही ईश्वर-भक्ति है । श्रम-साधना ही संसार में सुख-शांति का अद्वितीय, किंतु सरल साधन है–

स्रम कउ ईसर जानि कै, जउ पूजहि दिन रैन ।
'रविदास' तिन्हहि संसार महं, सदा मिलहि सुख चैन ।।

रविदासजी श्रमसाधना का दूसरों को उपदेश देकर ही नहीं रह जाते, अपितु स्वयं भी इसका पालन करते हैं । श्रम-साधना रूपी ईश्वर की पूजा द्वारा ही वे भवसागर से पार होने का अपना दृढ़ विश्वास प्रकट करते हैं–

'रविदास हौं निज हत्थहिं, राखौं रांबी आर ।
सुकिरित ही मम धरम है, तारैगा भव पार ।।

रविदासजी का यह संदेश कितना महान् एवं मौलिक है ।

गुरु रविदासजी की समाज को एक अन्य मौलिक देन है– प्रभु-भक्ति की सहज विधि । रविदासजी ने मानव जीवन का परम पुरुषार्थ प्रभु-भक्ति माना है, किंतु उनकी

भक्ति में किसी बाह्याचार तथा कर्मकांड का विधान नहीं है। इसकी आवश्यकता भी वे नहीं समझते। उनकी भक्ति सहज भक्ति है जिसमें किसी प्रयत्न विशेष की भी जरूरत नहीं और न ही घर-बार छोड़कर वन में जाना आवश्यक है। उनका तो मत है कि–

बन खोजइ पिअ न मिलहिं, बन मांह प्रीतम नांह।
'रविदास' पिअ है बसि रह्यौ, मानव प्रेमहिं मांह।।

इस प्रकार रविदासजी मानव प्रेम में ही प्रभु का वास मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने मानव-सेवा को तप की संज्ञा दी है और इसके द्वारा मोक्ष-धाम की प्राप्ति संभव बताई है, जो प्रभु-भक्ति का उत्तम फल है–

धुआं तपन मंहि का धरा, धूप तपन ही त्याग।
'रविदास' मिलिहै मोख धाम, सेवा ही तप आग।।

रविदासजी अपना उदाहरण देते हुए कहते हैं–

दीन दुखी करि सेव मंहि, लागि रह्यो 'रविदास'।
निसि बासर की सेव सों, प्रभु मिलन की आस।।

दुर्लभ मानव जन्म को सुखी और सफल बनाने के लिए गुरु रविदासजी ने समाज को जो महान संदेश दिया है, वह संक्षेप में उनके निम्नलिखित वचनों द्वारा विशेषतया प्रकट है–

1. कायम दायम राम इक, दोयम सत्त इमान।
   'रविदास' राम अरु सत्तबिन बिरथा सभ कुछ जान।।
2. एक भरोसो राम कौ, अरु भरोसो सत्तकार।
   सफल होहहु जीवना, कहि 'रविदास' बिचार।।
3. जिह्वा सों ओंकार जप, हत्थन सौं कर कार।
   राम मिलहिं घर आइ कर, कहि 'रविदास' बिचार।।

6

रविदास वाणी

साखी—भाग [1]

राम-ब्रह्म

'रविदास' हमारो राम जी, दसरथ करि सुत नांहि ।
राम हमउ मंहि रमि रह्यो बिसब कुटंबह मांहि ।।1।।
घट घट बिआपक राम है, रामंहि बूझै कोय।
'रविदास' बूझै सोइ राम कूं, जउ राम सनेही होय ।।2।।
एकै ब्रह्म हइ सकल मंहि, अरु सकल ब्रह्मह मांहि ।
'रविदास' ब्रह्म सभ भेष मंहि, ब्रह्म बिना कछु नांहि ।।3।।
'रविदास' जगत मंह राम सम, कोउ नांहि उदार ।
गनी गरीब नवाज प्रभ, दीनन के रखवार ।।4।।
'रविदास' अराधहु दवकूं, इक मन हुइ धरि ध्यान ।
अजपा जाप जपत रहहु, सत्तनाम सत्तनाम ।।5।।

---

1. गुरु रविदासजी की साखियों की पूरी जानकारी के लिए देखिए—आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद : 'रविदास दर्शन' श्री गुरु रविदास संस्थान, चंडीगढ़, 1973 ई. ।

साखी=4 उदार = दानशील, दयालु । गनी = धनी, कृपालु । गरीब नवाज = गरीबों पर दया करने वाला, दीनदयालु ।

साखी=5 अजपा जाप = सोऽहम् (मैं वही हूं) का जाप। इसे हंस मंत्र कहते हैं। इस मंत्र का उच्चारण सांस के भीतर-बाहर आने जाने मात्र से किया जाता है।

मंत्र का उच्चारण सांस के भीतर-बाहर आने-जाने मात्र से किया जाता है।

'रविदास' जो करता सरिस्टि का, वह तो करता एक।
सभ मंहि जोति सरूप इक, काहे कहूं अनेक ।।6।।
आद अंत जिह कर नहीं, जिह कर नाम अनंत।
सभ करि पालन हार हई, 'रविदास' अबिगत भगवंत ।।7।।
'रविदास' इक जगदीस कर, धरै अनंतह नाम।
मोरे मन मंहि बसि रह्यो, अधमन पावन राम ।।8।।
'रविदास' हमारो सांइयां, राघव राम रहीम।
सभ ही राम को रूप हैं, केसो क्रिस्न करीम ।।9।।
अलख अलह खालिक खुदा, क्रिस्न करीम करतार।
रामह नांउ अनेक हैं, कहै 'रविदास' बिचार ।।10।।
जब जब फैलेइ जगत मंहि, कूड पाप अंधिआर।
तब तब राखै हत्थ देई; 'रविदास' इक राम हमार ।।11।।
'रविदास' आस इक राम की, अरू न करहु कोउ आस।
राम छांड़ि अनत रमि हंइ, रहंइ सदा निरास ।।12।।

नाम-महिमा

जो लौं घट मंहि परान हैं, तो लौं जपउ सत्त नाम।
'रविदास' परम पद पाइहिं, जिन्ह घटि बसियो राम ।।13।।
सत्त ईश कहुं रूप है, सत्त सक्ति अत अपार।
'रविदास' सत्त कूं धारणा, देइहिं पाप निबार ।।14।।

साखी=7 आद = आदि, आरंभ
अविगत = अव्यक्त, अप्रकट
साखी=8 धरे = रखे हुए हैं अधमन पावन = दीनों की रक्षा करने वाला, पतितों का उद्धार करने वाला
साखी=10 खालिक = सृष्टिकर्ता, पतितों का उद्धार करने वाला
साखी=12 अनत = अन्यत्र, दूसरे में
साखी=13 परमपद = वैकुंठ धाम, मुक्ति
साखी=14 अत = अति, बड़ी

अंतर्मुखी भई जउ करहिं, सत्तनाम करि जाप ।
'रविदास' तिन्ह सौ भजहुहिं, जगतह तीन्हहु ताप ।।15।।
जा देख्या घिन ऊपजे, नरक कुंड मंहि बास ।
प्रभ भगति सों ऊघरै, प्रगटत जन 'रविदास' ।।16।।

प्राप्ति - मुक्ति

माथे तिलक हाथ जप माला, जग ठगने कूं स्वांग बनाया ।
मारग छांड़ि कुमारग डहकै, सांची प्रीत बिनु राम न पाया ।।17।।
बन खोजइं पिअ न मिलहिं, बन मंह प्रीतम नांह ।
'रविदास', पिअ है बसि रह्यो, मानव प्रेमहि मांह ।।18।।
'रविदास लोरै जिस बूंद कूं, सोई बूंद समुंद समान ।
अंतर खोजी कूं मिलइ, ब्रह्म बूंद को ग्यान ।।19।।

साखी=15 अंतर्मुखी = मन को बाह्य विषयों से हटाकर एकाग्रचित्ता होना
भजहुहिं = भाग जाते हैं, दूर हो जाते हैं
तीन्हहु ताप = तीन प्रकार के ताप, दुख, कष्ट
त्रिविध ताप हैं–
(1) आधि दैहिक ताप (आधि व्याधि) मानसिक तथा शारीरिक कष्ट
(2) आधि दैविक ताप = दैवी कोप
(3) आधिभौतिक ताप = प्राणियों से मिलने वाला दुख ।

साखी=16 घिन = घृणा, नफरत

साखी=17 मारग = सुमार्ग, सदाचार
कुमारग = कुमार्ग, बुरा रास्ता, कदाचार

साखी=18 मानव प्रेमहिं = मानव प्रेम में, मनुष्य से प्रेम करने में।

साखी=19 लोरै = खोजता है । समुद समान = समुद्र के समान
असीम, अथाह, सर्वत्र फैली हुई । अंतर खोजी = आत्मा की खोज
करने वाला, अपने अंदर ही खोजने वाला
ब्रह्म बूंद = ब्रह्मानंद रस

का मथुरा का द्वारिका, का कासी हरिद्वार ।
'रविदास' खोजा दिल आपना, तउ मिलिया दिलदार ।।20।।
नेक कमाई जउ करहि, ग्रह तजि बन नंहि जाय ।
'रविदास' हमारो राम राय, ग्रह महिं मिलिहिं आय ।।21।।
'रविदास' रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद ।
अह निसि हरि जी सुमिरिये, छांड़ि सकल प्रतिवाद ।।22।।

प्राप्ति कामना तथा अनुभूति

'रविदास' मदुरा का पीजियै, जौ चढ़ै-चढ़ै उतराय ।
नांव महारस पीजियै, जो चढ़ै नांहि उतराय ।।23।।
इक बूंद सौं बुझि गई, जनम जनम की प्यास ।
जनम मरन बंधन टूटई, भये 'रविदास' खलास ।।24।।
अमरित रस कइ बूंद कूं, तलफत हौं दिन रैन ।
'रविदास' अमीरस बिन पिये, जियरा न पावै चैन ।।25।।
प्रेम पंथ की पालकी, 'रविदास' बैठियो आय ।
सांचे सामी मिलन कूं, आनंद कह्यो न जाय ।।26।।
सुरत शब्द जउ एक हों, तउ पाइहिं परम अनंद ।
'रविदास' अंतर दीपक जरई, घट उपजई ब्रह्म अनंद ।।27।।

साखी=20 दिलदार = प्यारा
साखी=22 अहनिसि = अहर्निश, दिन-रात
प्रतिवाद = मतवाद, तर्क-वितर्क
साखी=23 मदुरा = मदिरा, शराब
साखी=24 खलास = मुक्त
साखी=25 तलफत = तड़पना, बेचैनी, दुःखी-पीड़ा
अमीरस = अमृतरस, ब्रह्मानंद रस
साखी=26 सामी = स्वामी, प्रभु
साखी=27 सुरत = ध्यान। शब्द = नाम जप, नाम स्मरण
परम अनंद = परमानंद, परमात्मा को

कर्म साधना

जिह्वा सों ओंकार जप, हत्थन सों कर कार ।
राम मिलहिं घर आइ कर, कहि 'रविदास' बिचार ।।28।।
करम बंधन मंह रमि रह्यो, फल कौ तज्यो न आस ।
करम मनुष को धरम है, सत भाषै 'रविदास' ।।29।।
जिह्वा भजै हरि नाम नित, हत्थ करहिं नित काम ।
'रविदास' भए निहचिंत हम, मम चिंत करेंगे राम ।।30।।
'रविदास' स्रम करि, खाइहि, जो लौं पार बसाय ।
नेक कमाई जउ करइ, कबहुं न निहफल जाय ।।31।।
स्रम कउ ईसर जानि कै, जउ पूजहि दिन रैन ।
'रविदास' तिन्हहि संसार महं, सदा मिलहि सुख चैन ।।32।।
प्रभ भगति स्रम साधना, जग महं जिन्हहिं पास ।
तिन्हहिं जीवन सफल भयो, सत्त भाषै 'रविदास' ।।33।।

जाति-पांति ऊंच-नीच भावना

'रविदास' इक ही नूर ते, जिमि उपज्यो संसार ।
ऊंच नीच किह बिध भये, बाह्मन अरु चमार ।।34।।
बाह्मन अरू चंडाल मंहि, 'रविदास' नह अंतर जान ।
सभ मंहि एक ही जोति है, सभ घट एक भगवान् ।।35।।
जात पांत के फेर मंहि, उरझि रहइ सभ लोग ।
मानुषता कूं खात हइ, 'रविदास' जात कर रोग ।।36।।
जन्म जात कूं छांड़ि करि, करनी जात परधान ।
इह्यो बेद कौ धरम है, करै 'रविदास' बखान ।।37।।
'रविदास' जन्म के कारनै, होत न कोउ नीच ।
नर कूं नीच करि डारि है, ओछे करम कौ कीच ।।38।।

साखी=31 स्रम = श्रम, परिश्रम । पार = वश, अधिकार
साखी=32 ईसर = ईश्वर
साखी=33 स्रम साधना = श्रमरूपी तपस्या, कर्म रूपी भक्ति
साखी=34 नूर = प्रकाश, ज्योति

'रविदास' सुकरमन करन सौं, नीच ऊंच हो जाय ।
करइ कुकरम जौ ऊंच भी, तौ महा नीच कहलाय ।।39।।
दया धर्म जिन्ह में नाहिं, हिरदै पाप को कीच ।
'रविदास' तिन्हहिं जानि हो, महापातकी नीच ।।40।।
जिन्ह करि हिरदै सत बसई, पंच दोष बसि नाहिं ।
'रविदास' तौ नर ऊंच भये, समुझि लेहु मन मांहि ।।41।।
पंच दोष तजि जो रहई, संत चरन लव लीन ।
'रविदास' ते ही नर जानई, ऊंचह अरु कुलीन ।।42।।

चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र)

काम क्रोध मद लोभ तजि, जउ करम धम कर कार ।
सोई बाह्मन जानिहि, कहि 'रविदास' बिचार ।।43।।
दीन दुखी के हेत जउ, बारै अपने प्रान ।
'रविदास' उह नर सूर कौ, सांचा छत्री जान ।।44।।
'रविदास' बैस सोई जानिये, जउ सत्त कार कमाय ।
पुंन कमाई सदा लहै, लोरै सर्वत्त सुखाय ।।45।।
'रविदास' जउ अति पवित्त है, सोई सूदर जान ।
जउ कुकरमी असुध जन, तिन्हहीन सूदर मान ।।46।।
हरिजनन करि सेवा लागै, मन अहंकार न राखै ।
'रविदास' सूद सोइ धन है, जउ असत्त बचन न भाखै ।।47।।

साखी=39 सुकरमन = अच्छे काम, उत्तम और भले कार्य
साखी=40 महापातकी = महापापी, अस्पृश्य
साखी=41 पंचदोष = काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा
मद (अहंकार) पांच विकार
कुलीन = अच्छे कुलका, उच्च वंश का
साखी=44 सूर = शूर वीर। छत्री = क्षत्रिय
साखी=45 बैस = वैश्य, बनिया। सर्वत्त = सर्वत्र, सब का
साखी=47 असत्त बचन = असत्य वाणी, झूठी बात

स्वराज्य-रामराज्य

पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत।
'रविदास' दास पराधीन सों, कौन करै है पीत ।।48।।
पराधीन को दीन क्या, पराधीन बेदीन।
'रविदास' दास पराधीन कौ, सबही समझै हीन ।।49।।
ऐसा चाहौं राज में, जहां मिलै सबन कौ अन्न।
छोट बड़ो सभ सम बसैं, 'रविदास' रहै प्रसन्न ।।50।।

पद भाग

परमतत्व

माधो, भ्रम कैसे न बिलाई, तार्थे दुती दरसै आइ ।।टेक।।
कनक कुटक सुत पट जुदा, रजु भुअंग भ्रम जैसा ।
जल तरंग पाहंन प्रतिमा ज्यूं, ब्रह्म जीव दुति जैसा ।।
बिमल ऐक रस उपजै न बिनसै, उदै असत दोऊ नांही ।।
बिगता बिगति घटै नहीं कबहूं, बसत बसै सब मांही
निहचल निराकार अज अनुपम, निरभै गति गोबिंदा ।।
अगम अगोचर अछर अतरक, निरगुन अति आनंदा ।।
सदा अतीत ग्यान धन बरजित, निरबीकार अबिनासी ।
कहै 'रविदास' सहज सुंन्नि सति, जीवन मुक्ति निधि कासी ।। 1 ।।

पद = 1– बिलाई = विलीन, नष्ट होता है। दुती = द्वैतभाव, जीव और ब्रह्म की पृथकता । कनक कुटक = सोना और उससे बना गहना । सुत पट = सूत और उससे बना कपड़ा। रजु भुअंग = रस्सी और सर्प। पाहन = पाषाण, पत्थर । बिगता बिगति = व्यक्त और अव्यक्त, प्रकट तथा अप्रकट ।

बसत = वस्तु, पदार्थ । अगम = अगम्य, पहुंच से बाहर । अगोचर = आंखों से दिखाई न देने वाला, इंद्रियों की पहुंच से बाहर। अछर = अक्षर, नाश न होने वाला। अतर्क्य = जो तर्क युक्ति द्वारा नहीं समझा जा सकता। निरगुन = निर्गुण, सत व रज और तम तीनों गुणों से परे । ग्यान धन बरजित = ज्ञान धन बर्जित, अज्ञेय, जो ज्ञान द्वारा नहीं समझा जा सकता। सुंन्नि = शून्य ।
जीवन मुक्ति निधि कासी = जीवनमुक्त महापुरुषों के लिए काशी के समान पवित्र स्थान ।

मन मेरे सति सरूप बिचारं ।
आदि अंति अनंत परम पद संसा सकल निवारं ।।टेक।।
जस हरि कहीऐ तस हरि नांही, है अस जस कछु तैसा ।
जानत जानत जानि रह्यो मन, मरम कहौ निज कैसा ।।
कहत आंन अनभवत आंन, रस मिल्या न बेगर होई ।
बाहरि भीतरि परगट गुपत, घट घट प्रति रमत अवर न कोई ।।
आदिहूं ऐक अंता फुनि सोई, मधि उपाधि सु कैसे ।
अहै ऐक पै भ्रम सूं दूजो, कनक अलंक्रत जैसे ।।
कहे 'रविदास' प्रकास परमपद, का जप तप बिधि पूजा ।
ऐक अनैक अनैक ऐक हरि, कहौं कवन बिधि दूजा ।।2।।

सब कछु करत न कहौं कछु कैसे, गुन बिधि बहौत रहत ससि जैसे ।।टेक।।
द्रुपन गगन अनील अलेप जस, गंध जलध प्रतिब्यंब देखि जस ।
सब आरंभ अकाम अनेहा, बिधि निखेद की यौ अनकेहा ।
इहिं पद कहत सुनत नहीं आवे, कहै, 'रविदास' सुकृति को पावे ।।3।।

नाम महिमा

धन्य हरिभक्ति त्रय लोक जस पावनीं, करौ सतसंद इहिं विमल जस गावनीं ।
बेद तैं पुरान तैं भागवत, भागवत तैं भक्ति प्रगट कीनीं ।
भक्ति तैं प्रेम प्रेम तैं लच्छना, बिना सतसंग नाहीं जाति चीनीं ।
गंगा पाप हरे ससि ताप, अरु कलपतरु दीनता दूरि खौवै ।
पाप अरु ताप सब तुच्छ मति दूरि करि, अमी की दृष्टि जब संत जोवै ।
विष्णुभक्त जितैं चित पर धरति, ते मन बच करम करि बिस्वासा ।
संत धरनी धरी कीर्ति जग बिस्तरी, प्रनत जन चरन 'रविदास' दासा ।।4।।

पद = 2– बेगर = बिना, बगैर । कनक = सोना । अलंक्रत = अलंकार, गहना ।
पद = 3– ससि = शशि, चंद्रमा । द्रपन =दर्पण, आईना ।
गगन = आकाश, आसमान । अनील = अनिल, हवा । अलेप = निर्लेप ।
अकाम = इच्छा रहित । अनेहा = अनासक्त । सुकृति = पुण्य ।
पद = 4–लच्छन = लक्षणा, प्रेम लक्षणा भक्ति । अमी = अमृत, कृपा ।

ध्रिगु ध्रिगु रे जीवणु राजा राम बिनां ।।टेक ।।
देहि नैन बिनु चंद, रैनि बिनु, जैसे मीना जले बिनां ।
बेसवा को सुत काको कहिऐ, तैसे प्रानी तेरे नामु बिनां ।
हस्ती अंकुस बिनु पंखी पंख बिनु, जैसे मंदर दीप बिनां ।
जैसे बाह्मन वेद बिहूणां तैसे प्राणी तेरे नामु बिनां ।
मंत्र सुरति बिनु नारी कंत बिनु, जैसे धरती इंद्र बिनां ।
जैसे ब्रिच्छा फलंहि बिहूणां, तैसे प्राणी तेरे नामु बिनां ।
कांम क्रोध हंकार निबारउ, त्रिसना तिआगहु संत जनां ।
कहे 'रविदास' अब सीतल हुए, जब लागे गुर के चरना ।।5।।

भक्ति

संतो ! अनिन भक्ति यहु नांही ।
जब लगि सत रज तम तीन्यो गुन, ब्यापल है या मांही ।।टेक ।।
सोइ आन अंतर करै हरि सौं अप मारग को आनैं ।
काम क्रोध मद लोभ मोह की, पल पल पूजा ठानैं ।
सक्ति सनेह इष्ट अंगि लावै, अस्थलि अस्थलि खेले ।
जे कछु मिले आन अखित, सौं सुत दारा सिर मेलै ।
हरिजन हरि बिनु और न जानै, तजै आन तनु त्यागी ।
कहे 'रविदास' सोई जनु निरमल, निसि दिन निजु अनुरागी ।।6।।

पद = 5—मीना = मीन, मछली । बेसवा = वेश्या, रंडी । काको = किसको । हस्ती = हाथी । अंकुस = अंकुश, लोहे का भाला (कांटा) जिसे महावत हाथी के सिर पर चुभाकर उसे चलाता है । बिहूणां = बिना, बगैर । इंद्र = राजा । ब्रिच्छा = वृक्ष, पेड़ ।

पद = 6—अनिन = अनन्य, सच्ची । सत रज तम = सतोगुण (उत्तम गुण), रजोगुण (राजस गुण) और तमोगुण (तामसिक गुण) ।
आने = अन्य, दूसरा । अंतर = भेद । अपमारग = उल्टा रास्ता ।
अस्थलि अस्थलि = स्थान-स्थान पर, जगह जगह, इधर उधर ।
आन अखित = अन्न और अक्षत, अनाज (गेहूं) और चावल ।
दारा = स्त्री, पत्नी ।
अनुरागी = अनुरक्त, प्रेमी ।

भगती ऐसी सुनह सुनहु रे भाई ! आई भगति तउ गई बड़ाई ।।टेक।।
कहा भयो नाचे अरु गायें, कहा भयौ तप कीन्हैं ।
कहा भयो जे चरन परवालें, जौं लौं परम तत नहीं चीन्हें ।।
कहै 'रविदास' तेरी भगती दूरि है, भाग बड़े सो पावै ।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपलक ह्वै चुणि खावै ।।7।।

ऐसी भगति न होई, रे भाई !
राम नाम बिनु जे कछु करीऐ, सो सब भरम कहाई ।।टेक।।
भगति न रस दांन भगति न कथै ग्यांन, भगति न बन में गुफा खुदाई ।
भगति न ऐसी हांसी, भगति न आसा पासी, भगति न कुल कानि गंवाई ।।
भगति न इंद्री बांधे, भगति न जोग साधैं ।
भगति न अहार घटाई, ऐ सब करम कहाई ।।
भगति न निंद्रा साधैं, भगति न बैराग बांधैं ।
भगति न ऐ सब बेद बड़ाई ।।
भगति न मूंड़ मुड़ाऐ, भगति न माला दिखाई ।
भगति न चरन धोवाए, ऐ सब गुनी जन कहाई ।
भगति न तौं लौं जानी, जौं लौं आप कूं आप बखानी ।
जोई जोई करै सोई करम कहाई ।
आपै गयौ तब भगति पाई, ऐसी भगति है भाई ।
राम मिल्यौ अपनौ गुन खोयौ, रिध्दि सिध्दि सबै जु गंवाई ।
कहै 'रविदास' छूटी आस, तब हरि ताही के पास ।
आतमा थिर भई, तब सब ही निधि पाई ।।8।।

पद = 7—परवालें = प्रक्षालन करने से, धोने से ।
आपा पर = अपने-पराये का विचार ।
पिपलक = पिपीलिका, चींटी ।

पद = 8—कानि = लोक लाज, लिहाज ।
अहार = आहार, भोजन ।
थिर = स्थिर ।

ज्यूं तुम्ह कारनी केसवे, अंतरि ल्यौ लागी ।
एक अनुपम अनभवै, किम होइ बिभागी ।।टेक ।।
एक अभिमानी चात्रिंगा, विचरत जगु मांही ।
जदपि जल पूरण मही, कहुं वा रुचि नांही ।
जैसे कामा देखै कामनी, रिदै सूल उपाई ।
कोटि बैद विध उचरैं, वाकी बिथा न जाई ।।
जो जिहिं चाहे सो मिलै, आरति गति होई ।
कहै 'रविदास' यहु गोपि नांही, जानै सब कोई ।।9।।

माई ! गोविंद पूजा कहा लै चरावउं ।
फल अरु फूलु अनुपन पावउं ।। टेक ।।
दूधु त बछरै थनहुं बिटारिओ, फूलु भंवरि जलु मीनि बिगारिओ ।
मैलागर बै रहे भुइअंगा, बिखु अमृतु बसहिं इक संगा ।।
धूप दीप नईबेदहिं बासा, कैसे पूज करहि तेरी दासा ।
तनु मनु अरपउं पूज चरावउं, गुर परसादि निरंजनु पावउं ।।
पूजा अरचा आहि न तोरी, कहि 'रविदास' कवन गति मोरी ।।10।।

इहै अंदेसो राम राई ! रैनि दिन मोरैं, निसि बासर गुन गाऊं तोरैं ।।टेक ।।
तुम च्यंतत मोरी च्यंता ही न जाहीं, तुम च्यंतामनि होहु कि नांही ।
भगति हेत तुम कहा कहा न कीनां, हमरी बेर कहा बलहीनां ।।
कहै 'रविदास' दास अपराधी, जौ तुम दरवौ सो मैं भगति न साधी ।।11।।

पद = 9– ल्यौ = लौ, लगन। बिभागी = अलग, पृथक् ।
चार्त्रिगा = चातक पक्षी। कामा = कामी पुरुष। कामनी = स्त्री।
आरति = रोग अथवा रोगी। गोपि = गुप्त छिपा हुआ ।

पद = 10–बिटारिओ = जूठा कर दिया ।
मैलागर = मलयगिरि,, मलय पर्वत ।
भुइअंगा = भुजंगा, सांप। बासा = सुगंध ।

पद = 11–अंदेसौ = अंदेशा, चिंता। च्यंतत = स्मरण करते हुए ।
च्यंता = चिंता, तुम्हें पानी की इच्छा ।
च्यंतामनि = चिंतामणि, इच्छाओं को पूरा करने वाले ।
कहा कहा = क्या-क्या ? बेर = बार, बारी में ।
कहा = क्यों ? दरवौ = द्रवित होओ, दयालु बनो ।

माधवे ! जानत हहुं जैसी तैसी, अब कहा करहुंगे ऐसी ।।टेक ।।
जउ हम बांधे मोह फांस, हम प्रेम बंधनि तुम बांधे ।।
अपने छुटन को जतनु करहु, हम छूटें तुम आराधे ।।
मीनु पकरि फांकिओ अरु काटिओ, रांधि कीओ बहु बानी ।
खंड खंड करि भोजनु कीनो, तऊ न बिसरिओ पानी ।।
आपन बापै नाही किसी को, भावन को हरि राजा ।
मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ, भगत नहीं संतापा ।।
कहि 'रविदास' भगति इक बाढ़ी, अब इह कासिउं कहीऐ ।
जा कारनि हम तुम आराधे, सो दुखु अजहू सहीऐ ।।12 ।।

ऐसा ध्यान धरौं बनवारी, मन पवन दिढ़ि सुखमन नारी ।।टेक ।।
सोई जप जपौं जु बहुरि न जपनां, सोई तप तपौं जु बहुरिन तपनां ।
सोगुर करौं जु बहुरि न करनां ऐसौं मरौं जु बहुरि न मरनां ।।
उलटी गंग जमुन मैं ल्याऔं, बिन ही जल मंजन है आऔं ।
लोचन भरि भरि व्यंब निहारौं, जोति बिचारि न अवर विचारौं ।।
प्यंड परै जीव जिस घरि जाता, सबद अतीत अनाहद राता ।
जा परि क्रिपा सोई भल जानैं, गूंगौ साकर कहा बखानैं ।।
सुंनि मंडल मैं मेरा बासा, ताथैं जीव मैं रहौं उदासा ।
कहै 'रविदास' निरंजन ध्याऔं, जिस घरि जाऔं बहुरि न आऔं ।।13 ।।

मेरी प्रीति गोबिंद सिउं जिनि घटै, मैं तउ मोलि महंगी लई जी अ सटै ।।टेक ।।
चितु सिमरन करउं नैन अविलोकनो, स्रवन बानी सुजसु पूरि राखउं ।
मनु सु मधुकरु करउं चरन हिरदै धरउं, अंमृत रांम नांम भाखउं ।।
साध संगति बिना भाउ नहीं ऊपजै, भाव बिनु भगति नहीं होइ तेरी ।
कहै 'रविदासु' इकु बेनती हरि सिउ, पैज राखहु राजा राम मेरी ।।14 ।।

पद = 12– जैसी तैसी = जैसी कुछ दशा, वास्तविकता। रांधि = पकाकर।
बहु बानी = अनेक प्रकार से। बाढ़ी = बढ़ी।
पद = 13– सुखमन नारी = सुषुम्ना नाड़ी । मंजन = मज्जन, स्नान ।
व्यंब = बिंब, झांकी, दर्शन । साकर = शक्कर, चीनी ।
सुंनि मंडल = परम पद ।
पद = 14– जिनि = न, नहीं । जीअ सटै = हृदय में लगे, समाये हुए ।
मधुकर = मधुकर, भौंरा। भाउ = भाव, श्रद्धा। पैज = प्रतिज्ञा ।

नाथ ! कछुअ न जानउं मनु माइआ कै, हाथि बिकानउं ।। टेक ।।
तुम कहीयत हौ जगत गुर सुआंमी, हम कहीयत कलिजुग के कांमी ।
इन पंचन मेरौ मनु जु बिगारिऔ, पलु पलु हरिजी ते अंतरु पारिओ ।।
जत देखउं तत दुख की रासी, अजौं न पत्याइ निगम भए साखी ।
गौतम नारि उमापति स्वांमी, सीसु धरनि सहस भग गांमी ।।
इन दूतन खलु बधु करि मारिऔ, बड़ो निलाजु अजहु नहीं हारिओ ।
कहि 'रविदास' कहा कैसे कीजै, बिनु रघुनाथ सरिन का की लीजै ।। 15 ।।

नामु तेरो आरती भजनु मुरारे !
हरि के नाम बिनु झूठे सगल पासारे ।। टेक ।।

नामु तेरो आसनों नामु तेरो उरसा, नामु तेरा केसरो लै छिटकारे ।
नामु तेरो अंभुला नामु तेरो चंदनों, धसि जपै नामु लै तुझहिं कउं चारे ।।
नामु तेरो दीवा नामु तेरो बाती, नामु तेरो तेलु लै मांहि पसारे ।
नाम तेरे की जोति लगाई, भइओ उजियारो भवन सगलारे ।।
नामु तेरो तागा नामु फूल माला, भार अठारह सगल जूठारे ।
तेरो कीआं तुझहिं किआ अरुपउं, नामु तेरा तूं ही चंवर ढोलारे ।।
दसुअठा अठसठे चारे खाणी, इहै बरतणि है सगल संसारे ।
कहै 'रविदासु' नामु तेरो आरती, सतनामु है हरि भोग तुहारे ।। 16 ।।

पद = 15– पंचन = काम, क्रोध मोह, भेद (अहंकार) पांच शत्रु, पांच विकार, दोष ।
अंतरु षारिओ = भेद डाला, पृथक किया ।
गौतम नारि = अहल्या । उमापति स्वामी = शिव ।
निलाजु = निर्लज्ज, बेहया ।

पद = 16– आसनों = आसन, बैठने की चीज, कपड़ा, चौकी आदि ।
उरसा = हुरसा, चंदन घिसने का पत्थर । केसरो = केसर ।
अमुला = जल । भार अठारह = बनस्पतियों के अठारह भार, सारी वनस्पतियों के पत्ते और फूल । दसअठा = अष्टदश, अठारह पुराण । अठसठे = अड़सठ तीर्थ । चारै खाणी = चारों दिशाएं अथवा अंडज, जरायुज, स्वेदज और उद्भिज = चारों योनियां ।

विनय

नरहरि ! चंचल मति मोरी, कैसे भगती करूं राम तोरी ।।टेक।।
तूं मोहिं देखै, मैं तोहिं देखूं, प्रीति परसपर होइ ।
तूं मोहिं देखै हों तोहिं न देखूं, इह मति सब बुधि खोई ।
सब घटि अंतरि रमसि निरंतरि, मैं देखत ही नहीं जांना ।
गुन सब तोर मोर सब औगुन, क्रित उपगार न मांना
मै तैं तोरि मोरि असमझि सों, कैसें करि निसतारा ।
कहै 'रविदास' क्रिस्न करुनामैं, जै जै जगत अधारा ।।17।।

राम गुसईआ जीअ के जीवनां, मोहिं न बिसारहु मैं जनु तेरा ।।टेक।।
मेरी संगदि पोच सोच दिनु राती, मेरा करमु कुटिलता जनमु कुमांती ।।
मेरी हरहु बिपति जन करहु सुभाई, चरण न छांड़उं सरीर कल जाई ।
कह 'रविदास' परउं तेरी सांभा, बेगि मिलहु जन करि न बिलंबा ।।18।।

जउपै हम न पाप करंता अहे अनंता ।
पतित पावन नामु कैसे हुंता ।।
तोहीं-मोहीं मोहीं-तोहीं अंतरु कैसा ।
कनक-कटिक जल-तरंगा जैसा ।।
तुम्ह जु नाइक आछहु अंतरजामी ।
प्रभ तें जनु जानीजैं जन तें सुआंमी ।।
सरीरु आराधै मोकउं बीचारु देहू ।
'रविदास' समदल समझावै कोऊ ।।19।।

पद = 17– क्रित = किए हुए । उपगार = उपकार, भलाई ।
असमझि = अज्ञान । करुनामै = करुणामय, दयालु ।
पद = 18– पोच = नीच, बुरी । सांभा = सभा, शरण ।
पद = 19– कटिक = गहना । आछहु = हो ।
बीचारू = सुमति सुविचार ।
समदल = समान दृष्टि वाला ।

तुझहिं चरन अरविंद भवन मनु पान करत,
पाइओ पाइओ रामइआ धनु ।।टेक।।
संपति विपत पटल माइआ धनु, तामंहि मगन होत न तेरो जनु ।।
कहा भइओ अउ तनु भइओ छिनु छिनु, प्रेमु जाइ तउ डरपै तेरो जनु ।
प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जन, कहि 'रविदास' छूटिबो कवन गुन ।।20।।

माधवे ! तुम न तोरहु तउ हम नहीं तोरहिं,
तुम सिउं तोरि कवन सिउं जोरहिं ।।टेक।।
जउ तुम गिरवर तउ हम मोरा, जउ तुम चंद तउ हम भए हैं चकोरा ।
जउ तुम दीवरा तउ हम बाती, जउ तुम तीरथ तउ हम जाती ।
सांची प्रीति हम तुम सिउं जोरी, तुम सिउं जोरि अवर संगि तोरी ।।
जहं जहं जाउं तहां तेरी सेवा, तुम सो ठाकुर अउरु न देवा ।।
तुमरे भजन कटहिं जम फांसी, भगति हेत गावै 'रविदासा' ।।21।।

पावन जस माधव ! तोरा, तुम दारन अध मोचन मोरा ।।टेक।।
कीरति तेरी पाप बिनासै, लोक बेद यूं गावै ।
जौ हम पाप करत नहीं भूधर, तौ तूं कहा नसावै ।।
जब लगि अंगि पंक नही परसै, तौ जल कहा पखालै ।
मन मलीन बिखिआ रस लंपट, तौ हरि नाव संभालै ।।
जौ हम रिदै सुध बिमल चित्त, दोस कवन परि धरि हौ ।
कहै 'रविदास' प्रभु तुम दयाल हौ, अबंध मुकति का करि हौ ।।22।।

पद = 20– छिनु छिनु = क्षीण से क्षीणतर, दुर्बल से दुर्बलतर। डरपै = डरता है।
जेवरी = जेवड़ी, रस्सी। गुन = उपाय, तरीका।
पद = **21**–जाती = यात्री।
पद = 22– दारन = दारुण, कठोर, बड़े। अघ = पाप।
भूधर = पहाड़ जैसे, बड़े, घोर।
पंक = कीचड़।
अबंध = बंधन रहित, उन्मुक्त।

अब कैसे छूटै नाम रट लागी ।। टेक ।।
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समानी ।
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितबत चंद चकोरा ।।
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती ।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहिं मिलत सोहागा ।।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, जैसी भगति करै 'रविदासा' ।।23 ।।

या रामां एक तूं दाना, तेरा आदि भेख ना ।
तू सुलतान सुलताना, बंदा सकिस्ता अजाना ।। टेक ।।
मैं बेदियानत बेनजर, दरमंद बरखुरदार ।
बे अदब बदबख्त वीरां, वे अकलि बदकार ।।
मैं गुनहगार गुमराह गाफिल, कमदिलां दिलतार ।।
तू दरकदर दरियावदिल मैं हिरसिया हुसियार ।।
मैं हस्त खस्त खराब, खातिर अंदेसा बिसियार ।।
'रविदास' दासहिं बोलि साहिब, देहु अब दीदार ।।24 ।।

पद = 23– बास = वास, सुगंध । घन = बादल ।
बाती = बत्ती । बरै = बलती है, जलती है ।

पद = 24– दाना = बुद्धिमान । सुलतान सुलताना = राजाओं का राजा, बादशाहों का बादशाह । बंदा = सेवक । सकिस्ता = मग्न हृदय, टूटा हुआ, निर्बल । बेदियानत = बेईमान, अधर्मी ।
बेनजर = नेत्रहीन, अंधा, अज्ञानी । दरमंद = शरणागत ।
बरखुरदार = पुत्र, प्रिय ।
बेअदब = अविनीत, अशिष्ट ।
बदबख्त = अभागा, बदकिस्मत । वीरां = वीरान, निराश ।
बेअक्लि = बुद्धिहीन । बदकार = बुरे काम करने वाला ।
गुमराह = रास्ते से भटका हुआ, उल्टे रास्ते पर चलने वाला ।
गाफिल = असावधान, लापरवाह । कमदिलां = छोटे दिल का ।
दिलतार = कलुषित मन, काले दिल वाला ।
दरकदर = शरण देने वाला । दरियावदिल = दरियादिल, उदार ।
हिरसिया = ईर्ष्यालु, डाह करने वाला । हुसियार = होशियार, चतुर ।
हस्त खस्त खराब = खाली हाथ, बुरा हाल । खातिर = दिल ।
अंदेशा = शक, संदेह, चिंता । बिसियार = बहुत अधिक ।
दीदार = दर्शन ।

उद्बोधन

किआ तू सोइआ जागु इआना, तैं जीवनु जगि सचु करि जाना ।।टेक।।
जो दिन आवहिं सो दिन जांही, करना कूचु रहनु थिरु नांही ।।
संगु चलत हैं हम भी चलना, दूरि गवनु सिर ऊपरि भरना ।
जिनि जीउ दीआ सु रिजकु अंबरावे, सभ घट भीतरि हाटु चलावे ।
करि बंदिगी छांड़ि मैं मेरा, हिरदै नामु सम्हारि सबेरा ।
जनमु सिरानों पंथु न संवारा, सांझ परी दहदिस अंधियारा ।
कहि 'रविदास' निदानि दिवाने, चेतसि नाहीं दुनींआ फनखाने ।।25।।

माटी को पुतरा कैसे नचतु है ।
देखै-देखै सुनै बोलै दउरिओ फिरतु है ।।टेक।।
जब कछु पावै तब गरबु करतु है, माइआ गई तब रोवनु लगतु है ।
मन बच क्रम रस कसहिं लुभाना, बिनसि गइआ जाइ कहूं समाना ।
कहि 'रविदास' बाजी जगु भाई, बाजीगर सउं मोहिं प्रीति बनिआई ।।26।।

इहु तनु ऐसा जैसे घास की टाटी ।
जलि गइओ घासु रलि गइओ माटी ।।टेक।।
ऊंचे मंदर साल रसोई, एक घरी फुनि रहनु न होई ।
भाई बंध कुटंब सहेरा, ओइ भी लागै काढु सबेरा ।
घर की नारि उरहिं तन लागी, उह तउ भूतु भूतु करि भागी ।
कहि 'रविदासु' सभै जगु लूटिआ, हम तउ एक राम कहि छूटिआ ।।27।।

पद = 25— इआना = अयाना, अज्ञानी, नासमझ । रिजकु = रिजक, जीविका, रोजी । अंबरावे = उत्पन्न करता है, देता है । सिराना = बीत गया है, समाप्त हो गया है । दहदिस = दसों दिशाओं में, चारों तरफ । फनखाने = नाशवान, कपट और धोखे का घर ।

पद = 26— रस = आनंद, विषय भोगादि । बाजी = खेल, लीला, संसार । बाजीगर = लीला करने वाला, परमात्मा ।

पद = 27— टाटी = टट्टी परदा । रलि = मिलना । सहेरा = साथी ।

रे मन ! राम नाम संभारि ।
माया के भ्रमि कहा भूल्यौ, जाहिगौ कर झारि ।।टेक ।।
देखि धों इहां कौन तेरौ, सगौ सुत नहीं नारि ।
तोरि तंग सब दूरि करिहैं, देहिंगे तनु जारि ।
प्रान गये कहु कौन तेरौ, देखि सोचि बिचारि ।
बहोरि इहिं कलिकाल मांही, जीति भावैं हारि ।
यहु माया सब थोथरी रे, भगति कौं प्रति पारि ।
कहै 'रविदास' सति बचन गुरु के, सो न जीअ तै टारि।।28।।

प्रानी किआ मेरा किआ तेरा, जैसे तरवर पंखि बसेरा ।।टेक ।।
जल की भीति पवन का थंभा, रक्त बुंद का गारा ।
हाड़ मांस नांड़ी को पिंजरु, पंखी बसै बिचारा ।।
राखहु कंध उसारहु नीवां, साढ़े तीनि हाथ तेरी सीवां ।
बंके बाल पाग सिर डेरी, इहु तनु होइगो भसम की ढेरी ।।
ऊंचे मंदर सुंदर नारी, राम नाम बिनु बाजी हारी ।
मेरी जाती कमीनी पांति कमीनी, ओछा जनमु हमारा ।
तुम सरनागति राजा रामचंद, कहि 'रविदास' चमारा ।।29।।

हुसिआरी हुसिआरा रे ।
मन जपि लै राम पिआरा रे ।।टेक ।।
गढ़ि कांचा तसकर लागा रे, तूं काहे न जान अभागा रे ।
नेत्र पसारि न देखै रे, तेरा जनम मरण केहि लेखे रे ।
पाउं पसारि क्या सोया रे, तैं जनम अकारथ खोया रे ।।
जन 'रविदास' राम मिलजै रे, कछु जागति पहरा कीजै रे।।30।।

पद = 28– कर = हाथ। धों = तो, भला। तंग = सूत्र, संबंध।
थोथरी = थोथी, झूठी।

पद = 29– तरवर = तरुवर, बड़ा वृक्ष। भीति = दीवार। थंभा = खंभा।
पिंजरु = पंजर शरीर। पंखी = जीवात्मा। कंध = दीवार।
सीवां = सीमा, हद।
बंके = बांके, सुंदर, घुंघराले। डेरी = टेढ़ी, तिरछी।

पद = 30– गढ़ि = गढ़, शरीर। कांचा = कच्चा। तसकर = तस्कर,
चोर। लेखे = लिए, वास्ते।

काहे मन मारन बन जाई, मन कौ मार कवन सिधि पाई ।
बन जाकरि इहि मनवा न मरहीं, मन कौ मारि कहहु कस तरहीं ।
मन मारन का गुन मन माहीं, मनु मूरख तिस जानत नांही ।
पंच बिकार जौ इहिं मन त्यागै, तौं मन राम चरण मंहि लागै ।
रिदै राम सुध करम कमावऊ, तौ 'रविदास' मधु सूदन पावऊ ।।31।।

अनुभूति

गाइ गाइ अब का कहि गाऊं । गावन हारां कूं निकट बताऊं ।।टेक।।
जब लगि है या तन की आसा, तब लगि करै पुकारा ।
जब मन मिलिऔ आस नही तन की, तब को गावन हारा ।।
जब लगि नदी न समुंद समावै, तब लगि बढ़ै हंकारा ।
जब मन मिलिऔ राम-सागर सूं, तब यहु मिटी पुकारा ।।
जब लगि भगति मुकति की आसा, परम तत्त सुनि गावै ।
जहं-जहं आस धरत है यहु मन, तहं तहं कछू न पावै ।।
छांड़ै आस निरास परमपद, तब सुख सति कर होई ।
कहै 'रविदास' जासूं अउर कहत है, परम तत्त अब सोई ।।32।।

अैसो कछु अनभउ, कहत न आवै ।
साहिब मेरो मिलै, तउ को बिगरावै ।।टेक।।
सब मैं हरि है हरि मैं सब है, हरि अपन पउ जिनि जाना ।
आपनि आपि साखी नहि दूसर, जाननहार समाना ।
बाजीगर सू रांचि रहीए, बाजी कूं मरम इनि जाना ।
बाजी झूंठ सांच बाजीगर, जाना मन पतिआना ।
मन थिर होई तऊ कोई न सूझै, जाने जाननहारा ।
कहै 'रविदास' बिमल बिबेक सुख, सहज सरूप संवारा ।।33।।

पद = 31– सुध = शुद्ध, पवित्र, अच्छे ।
पद = 32– या = इस । हंकारा = अहंकार, हुंकार, आवाज, पुकार ।
पद = 33– अनभउ = अनुभव, अनुभूति । बिगरावै = अलग होना चाहेगा ।
अपानि आपि = अपने आप, स्वयं ही । साखी = साक्षी, प्रमाण ।
मरम = मर्म, भेद । पतिआना = विश्वास करना ।

अब मोहिं खूब वतन गह पाई, ऊहां रवैरि सदा मेरे भाई ।।टेक।।
बेगमपुरा सहर को नाउं, दूखु अंदोहु नहीं तिहि ठाउं ।।
ना तसवीस रिवराजु न मालु, खउफ न खता न तरसु जवालु ।।
काइम दाइम सदा पातिसाही, दोम न सेम एक सो आही ।।
आबादानु सदा मसहूर, ऊहां गनी बसहिं मामूर ।।
तिउं तिउं सैल करहिं जिउं भावै, मरहम महिल न को अटकावै ।
कहि 'रविदास' खलास चमारा, जो हम सहरी सो मीतु हमारा ।।34।।

देहू कलाली ! येक पियाला, अैसा अवधू होइ मतिवाला ।।टेक।।
कहै कलाली पियाला देऊं, पीवन हारैं का सिर लेऊं ।
ऐरी कलाली ! तैं क्या कीया सिरका सा तैं पियाला दीया ।
सिरकै साटै मंहगा भारी, पीवैगा अपना सिर डारी ।।
चंद सूर दोऊ सनमुख होई, पीवै पियाला मरै न कोई ।
सहज सुंनि में भाठी स्रवै, पीवै 'रविदास' गुरमुख द्रवै ।।35।।

पद = 34– बेगमपुरा = चिंता रहित स्थान, अशोक नगर ।
अंदोह = अंदेशा, भय, आशंका । तसबीस = सोच,
घबराहट । खिराजु = कर, टैक्स ।
खता = अपराध, कसूर । तरसु = दया, कृपा ।
जवालु = पतन, गिरावट ।
काइमु दाइमु = स्थिर रहने वाला । दोम न सेम = दूसरा न तीसरा ।
आबादानु = वहां के रहने वाले । महरम = परिचित ।
गनी = धनी, दयालु ।
मामूर = संपन्न, संतुष्ट । खलास = मुक्त ।
हम सहरी = हमारे साथ नगर में रहने वाला ।

पद = 35– कलाली = कलवारिन, गुरु । अबधु = अवधूत, साधक ।
सिरका सा = सिरके की तरह कसैला अथवा सिरका-सा,
सिर जैसा प्याला । सहज सुंनि = ब्रह्मरंध्र । स्रवै = बहती है ।
द्रवै = कृपालु, दयाल ।

पीया राम रसि पीया रे ।
ता तैं अमर जुगो-जुग जीया रे ।।टेक।।
दया सुराही तत्तु पिआला निरभउ अम्रित चीना रे ।
भरि-भरि देवै सुरत कलाली, दरिया दरिया पीना रे ।।
मनिमाता मन मा मतवारी, चित गलतान हैराना रे ।
पीवतु पीवतु आपा भूला, पीवनुहार बिलाना रे ।।
पांच पचीस तीन अरु चारा, मजलस मांहि घिराना रे ।
पीवतु पीवतु उनमत मामा, अलमस्ती दिवाना रे ।।
दरि धरि भूलि गइउ 'रविदासा' आसा सद मतवारी रे ।
पलु पलु प्रेम पियाला चालै, छूटै नांहि खुमारी रे ।।36।।

सर्वसुख कामना

माधवे ! पारस मनि लै जाउ, मोहिं सोने का नहिं चाऊ ।
जउ मो पै राम दयाला, दैउ चून लून घीउ दाला ।।
में रूखी सूखी खाऊं, औरन की भूख मिटाऊं ।
कोई परै ना दुख की पासा, सब सुखी बसैं 'रविदासा'।।37।।

पद = 36– गलतान = डूबा हुआ ।
पांच = काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, पांच विकार ।
पचीस = 5 ज्ञानेंद्रियां 5 कर्मेंद्रियां 5 विषय 5 महातत्व और 5 प्राण – ये पच्चीस तत्व जिनसे शरीर बना है ।
तीन = सत, रज, तम–तीन गुन ।
चार = मन, बुद्धि चित्त, अहंकार– चार अंतःकरण ।

पद = 37– चाउ = चाव, चाह। चून = आटा।
लून = लवण, नमक। पासा = पाश, बंधन ।

मुद्रक : ब्यूटी प्रिंट, 10/8020 मुलतानी ढांडा, पहाड़गंज, नई दिल्ली-55